* उन्नति-सोपान *

लेखक—

पं० उद्धवराम गौतम,

मैनेजर—

(दी भारत इन्डस्ट्रीयल कम्पनी, अमृतसर)

प्रकाशिका—

सरस्वती देवी

व्यवस्थापिका—

'सरस्वती-मन्दिर', आर्य्यनगर

पो० ल्यूड़ी—डि० होशियारपुर (पंजाब)

प्रथम बार २०००] संवत् १९८५ वि० [मूल्य ॥=)

* समर्पण *

स्वर्गीय लाला लाजपतरायके

चरण कमलोंमें ।

लालाजी, हम एकतीस कोटिके हृदय मन्दिरके आराध्यदेवजी, भारतवर्ष, अन्धकारमें पडा हुआ दुखिया भारतवर्ष, आपको ढूंढ़ रहा है। हम आपको कहां पावें कि आपके चरणोंमें यह तुच्छ भेंट अर्पण करें। जो हो हमें विश्वास है कि आपकी आत्मा पथभ्रष्ट भारतको टकटकी लगाये देखती होगी। केवल इसी आशा और भरोसेसे यह आपका मूढ़ भक्त आपके चरणोंमें इस क्षुद्र पूजाको समर्पित करता है। आशा है आप हमारे सन्तप्त हृदयको सन्तुष्ट करनेको इसे स्वीकार करेंगे।

आपका क्षुद्र सेवक :—

उद्धवराम गौतम ।

ॐ

* भूमिका *

प्रत्युत पुस्तकमें सामाजिक और धार्मिक समालोचना भी दी गई है हो सकता है कि जिनका जिस बातपर विश्वास है उसके विरुद्ध बात पढ़कर लेखकके ऊपर वे रुष्ट भी हों पर मेरा नम्र निवेनन है कि एक बार भूल करनेसे मनुष्यको बराबर भूल नहीं करना चाहिये बल्कि कुछ विचारशक्तिसे काम लेना चाहिये। कहनेवालेकी बात यदि वितण्डाबाद छोड़कर दलीलोंके सामने नहीं ठहर सकती तब तो उसे रद्दीकी टोकरीमें फेंक देना चाहिये और यदि कहनेवालेकी बात ठोस और तर्कके सामने मजबूतीसे ठहर सकती है तो कोई वजह नहीं है कि हटसे मान बैठनेवाला न माने या लिखनेवालेके सामने अंगुली उठा सके।

मानलीजिये कि हम हिन्दुओंका पूर्ण विश्वास है कि संसार अनित्य है, निःसार है। इसलिये कुछ यत्न न कर केवल ब्रह्मकी ही चिन्तना करनी चाहिये। तो क्या इसी सिद्धान्तपर चलने वाले श्रीस्वामी शङ्कराचार्यके गद्दीधारी जगद्गुरु महाराजलोग संसारको अनित्य मानते हैं, यह हम मान लें ! या इस बातपर लट्टू होनेवाले हिन्दू महाशय भी संसारको सचमुच अनित्य मानते

हैं, इसपर हम विश्वास करलें ? यदि हम ऐसा करते हैं तो हम अपनी आंखोंको धोखा देते हैं और अपनी बुद्धिका खून करते हैं।

जिनके पास करोड़ोकी सम्पत्ति भरी पड़ी है और जो लक्ष्मी की गोदमे खेलते तथा जिनका मांसपिंड गुलगुले गलीचेका अभ्यासी है वे भी संसारको अनित्य कहनेकी ढिठाई करें तो संसारी विषयी या गृहस्थ किसे कहेंगे ? इसलियेः—

"अर्थ मनर्थं भावय नित्यम् ।
भज गोविन्दम् भज गोविन्दम् ॥
गोबिन्दम् भज मूढ़ मते ।"

कहने वाले जरा हमें दम लेने दें। या अपने खयाली इस अनित्य संसारसे छुट्टी लेकर उस संसारमे जाकर अपने उपदेशकी झोली खोलें। हम गरीब भारतीयोको अनित्यता समझा समझा कर न मार डालें। इसीलिये ऐसी घातकबातोका खंडन इस पुस्तकमे निर्भीक भावसे किया गया है।

साथ ही इसमे मत-मतान्तरोका खयाल बिलकुल नहीं किया है। चाहे किसी मतके विरुद्धमे या पक्षमे बात जाती आती है इसपर ध्यान ही नही दिया गया। यहां तो 'एकहि ध्यान एक व्रत नेमा' के अनुसार यही देखा गया है कि धर्म समाज या देश (राष्ट्र) की कैसे भलाई होगी। बस इन तीनोके विघातक जो भी बात सामने आई उसे कलमसे ठुकरा देना पड़ा।

अब वह जमाना नहीं रहा कि कोई किसीके डरसे आत्माकी हत्या कर अपनी कलमको रोक रोक कर चलावे। अब वह जमाना है कि हृदयके सच्चे भावोंको हम देशके सामने रखें और देशके भावुक लोग उसपर दिल खोलकर अपने इन्कार स्वीकारका फतवा दें।

अभी तो हमने एक पुस्तक अपने प्रवीण पाठकोंके सामने रखा है। अभी उनके सामने बहुत कुछ रखना है। फिर कभी सेवामें रखा जायगा। अभी तो हमने भावोंका श्रीगणेश किया है। यदि कोई विघ्न बाधा सामने न आखड़ी हुई तो शीघ्र ही दूसरी पुस्तक भी पाठकोंकी सेवामें उपस्थित हो जायगी।

इसमें हमारे देशके नवयुवकोंको ही अधिक सम्बोधित किया गया हैं। इसका भी यही कारण है कि उनका जन्म उस समय हुआ है जिस समय देशकी हवा कुछ जागृतिसे सनी हुई वहने लगी थी। उनके बाल्यकालमें जो हवा उन्होंने पी है उनके बचपन में जिस भावकी घोंटी उन्हें दी गई है उनकी नवजवानीमें जो घटनायें सामने आईं हैं वे हमारे अधिक उम्रवाले भाइयोंको उस समय मुयस्सर न हुई होगी। उसके नसे जिस खूनसे मजबूत हुई है हमारे अन्य भाइयोंकी नसोंमें वह ताकत नहीं होगी। इसलिये उनके हृदयमें वह शक्ति कठिनतासे उतरेंगी। इसीलिये उनसे विशेषरूपसे बातें कही गई हैं।

एक बात और भी है वह यह कि हमारे हिन्दूधर्मशास्त्रोंमें

बहुत बातें मिलावटकी भी आगई है। शूक्ष्मविचारसे
साफ साफ नजर आने लगेगा कि ये मिलावटकी बाते हैं
यहातक कि अच्छे २ व्यवसायियोका अपमान करनेवाली बा
घुसाकर देशके व्यापारकी मेटियामेट कर दी गयी है। हमा
कहनेका यह कदापि मतलब नही है कि हम अपने धर्मशास्त्र
या पुर्वपुरुषोकी कृतिको बुरी द्रष्टिसे देखते या उनपर हमार
श्रद्धा नही है। पर बात यह हैं कि हमारे बाबाने कोई घ
बनवाया हो और कालान्तरमे उसमे झोल झक्कर लग गये हं
कालिख भी दीवारोपर लग गई हो, या किसीने शौच कर दिय
हो तो उसे साफ करना कोई अपराध नहीं हैं। यह कहनेवाल
भूल भुलैयामे पडा हुआ है कि कहे नही? मकानको म
साफ करो क्योंकि बाबाकी कीर्ति जाती रहेगी। बाबाक
कीर्तिपर हाथ डालनेसे उसका रूप बदल जायगा। छोड़ द
शौचादि पडे रहने दो नहीं तो लोग बाबाको भला बुरा कहं
लगेंगे। मूर्ख! बाबाके घरको साफ सुथरा रखनेसे बाबाकं
कीर्ति और बढ़ेगी या घटेगी? इसी सिद्धान्तके आधारपर हमं
ऊपरकी भी पोल खोली है।

इस पुस्तकके लिखनेका एक और भी प्रधान उद्देश्य हैं।
शूक्ष्मविचारसे देखा जाय तो देशकी उन्नतिके बाधक प्रधानत
दो ही हैं:—दरिद्रता और मूर्खता। इस पुस्तकका प्रधान उद्देश्
दुःख मिटानेका है। लेखककी बातें बिचार कर पाठक कमसे का

अपनी सच्ची उन्नतिका मार्ग ढूढ लेंगे। हम उन्नतिके सभी मार्ग तो नहीं बता सकते। हा, उसके लक्ष्यके ऊपर इशारामात्र किया है। यदि इशारेपर भी हमारे भाई बन्धु ध्यान देंगे तो वे बहुत कुछ अपने लक्ष्यतक पहुंच जायंगे।

प्रायः सभी लेखोंमे जोर दिया गया है कि दृढ़ताके साथ आगे बढ़ो और धैर्य्य तथा साहससे काम लो। इनके लिखनेका कारण भी यही है कि दृढता, धैर्य्य और साहसके अभावसे ही हम अपने व्यापार या धर्म-कार्य्यमें धक्के खाते जाते हैं। यदि इनका पल्ला पकडे हम डटे रहें तो सम्भव है कि हमारा पैर आगेको ही बढ़ता जायगा पीछे हम न हट सकेंगे।

एक बातपर और भी बल दिया गया है कि जहा तक हो सका उदाहरणमें हमने अपने ही पूर्वपुरुषोंका चरित्र दिया है। दूसरे देशके लोगोंका बहुत कम। इसका भी यही मतलब है कि —

"अर्कचेन्मधु विन्देत, किमर्थं पर्वतं व्रजेत्"

अर्थात् घरके कोनेमें ही शहद मिल जाय तो पर्वतपर जानेकी क्या आवश्यकता? यदि हमारे पुरुषोंके चरित्रमें ही उन्नतिके सभी साधन मिलते हैं तो हम क्यो दूसरे देशके नायकोंका चरित्र क्यों भरें!

'न छूओ सुधा भी विदेशी जो होवै,
स्वघरके चना भी चबाओ चबाओ'

इस न्यायसे और जातीयताके ख़यालसे हमें तो छोटे २ चरित्र नायकोंके ऊपर भी बड़ी श्रद्धा रखनी चाहिये और संपूर्ण संसार के चरित्रनायकोसे जिन यशस्वी हमारे पवित्रदेशके चरित्रनायकोंकी अनुपम कीर्ति है उनके उदाहरणसे तो हम और भी संतोष होना चाहिये। इसीलिये और लेखकोंकी तरह विदेशी साहसी पुरुषोंका उदाहरण नहीके बराबर दिया है।

हमने अपने भारतीय सिद्धान्तके अनुसार भाग्यको बिलकुल नही माना है।

नही माननेके कई कारण हैं—एक तो यह कि इस भाग्य, नसीब, कर्मरेख इत्यादि शब्दोंने नहीं हम हिन्दुओंको मार डाला। अच्छे कार्यों या पत्रोंको करनेकी शक्ति हरा दी, दूसरे हमें ईश्वरके माननेसे अलग कर दिया। यदि हम भाग्यको न मानकर ईश्वरकी इच्छा मान बैठें तो हमारा क्या बिगड़ता है। कहनेवाले यह दलील पेश कर सकते हैं कि बुरे फलमे ईश्वरकी कृपालुतासे त्रुटि आती है तो मै उनसे निवेदन करूंगा कि यदि बुरे कर्म फल देनेमें ईश्वर अपनी कृपालुता दिखावे तो मानो वह अपनी कृपालुताका दुरुपयोग कर रहा है। वास्तवमें जिसके ऊपर उसे कृपालुता दिखाना चाहिये उसीके ऊपर कृपालुता शोभती भी है। दूसरी बात यह भी हैं कि यदि मान भी लीजिये कि उसने किसीको बुरा फल भी दिया तो उस परब्रह्मकी यह इच्छा कदापि न समझी जायगी कि वह बुरे भावसे उस प्राणीको

सता रहा है बल्कि वहां यह भाव समझना चाहिये कि जैसे सोनार सोनेको तबतक तपाता है जबतक सोना पूर्ण रूपेण शुद्ध न हो जाय। इससे समझनेवालेको यह न समझ लेना चाहिये कि सोनार बुरे भावसे सोना तपा रहा है। बल्कि समझना चाहिये कि सोनेको शुद्ध चमकीला और लोकमें प्रतिष्ठित बनानेहीके लिये सोनेपर वैसी कड़ी आंच दे रहा है। वैसे ही ईश्वरके सम्बन्धमें भी यही समझना चाहिये कि वह सोनार जीव सोनेको जबतक माया भ्रम इत्यादि मैलको दुःख रूपी आंचसे शुद्ध न कर लेगा तबतक जीव सोनेको शुद्ध करता रहेगा। जब वह जीव निरंजन हो जाता है तो उसे छोड़ देता है।

इसलिये बुरे फल दुःखसे हमे घबड़ा कर भाग्यको ही प्रधान नहीं मान बैठना चाहिये। इस भाग्यने हमारे कर्म्मयोगको बहुत नीचा दिखाया। हमे निकम्मा बनाया, भरते हुए हमारे शरीरपर ईंट बरसाई। हमारे देशके प्राण उद्योग धन्धोंपर आग बरसाई, हमे मार डाला। इसलिये हमें भाग्य शब्दको लातों कुचल डालना चाहिये और उद्योग धन्धोंको आगे बढ़ाना चाहिये। यदि सद्बुद्धिसे जमा खर्चको सामने रखते हुए कष्टोंका आलिङ्गन कर हम डटे रहें तो अवश्य उसका फल अच्छा होगा। इसीलिये भाग्यका इस पुस्तकमें खंडन किया गया है। भाग्य शब्द हमारे भारत वर्षमें बहुत प्रचलित हो गया है। इसका खंडन बहुतोंको अखरेगा और इस बातपर टीका टिप्पणी भी

बहुत होगी पर भाग्यवादियोंको जरा ठंढे दिमागसे विचार कर लेना चाहिये कि इस लेखकका भाव क्या है, सत्य है कि झूठा।

यदि थोड़ी देरके लिये मान भी लें तो भी भाग्यतर्कके सामने ठहर नहीं सकता। संस्कृतके आचार्योंने एक 'दध्यादि न्याय' माना है। उसका अभिप्राय यह है कि:—

'यथा दुग्ध हि दधि रूपेण,
परिणामति तथैव सञ्चित,
कर्म्मैव भाग्य मित कथ्यते'

अर्थात् जैसे दही इत्यादिके संयोगसे दूध ही दही हो जाता है दही कोई दूसरा पदार्थ नहीं है। उसीतरह संचित कर्म ही भाग्यनामसे कालान्तरमें कहा जाता है।

इन्हीं कई बातोंका अनुमानकर लेखकको समाजसे इसकी प्रबल धारणापर कुठार चलाना पड़ा। आशा है कि प्रवीण पाठक पाठिकायें इसपर विचार करेंगे।

अन्तमें सभी पाठक तथा पाठिकाओंसे प्रार्थना है कि इसकी भाषाकी त्रुटियोंपर ही विशेष ध्यान न देंगी बल्कि भावपर भी कृपा करेंगी। क्योंकि जिस शीघ्रतासे यह पुस्तक छपी है, इसमें भाषाकी अशुद्धियां व फर्मो भूल रह जाना स्वाभाविक है। इत्यलम्

देशबन्धु-नगर
कांग्रेस-कैम्प,
कलकत्ता
२८-१२ २८। — उद्धवराम गौतम।
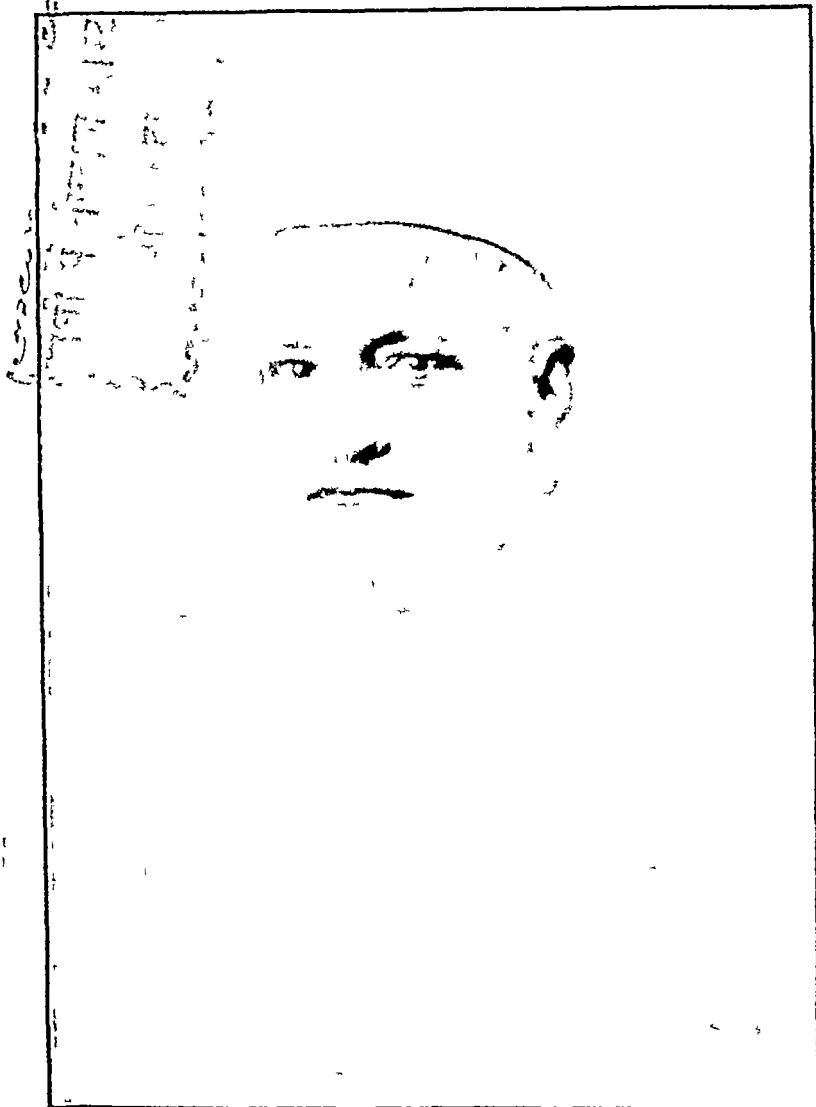
त्यागमूर्ति प० मोतीलालजी नेहरु।

जिसको न निज गौरव तथा निज जातिका अभिमान है।
वह नर नहीं नर-पशु निराधन और मृतक समान है॥

❋ प्रथम सोपान ❋

एकता ।

संघेशक्तिः कलौयुगे ।

ओ३म् सहनाववतु सहनौभुनक्तु, सहवीर्य्यं करवाव है
तेजस्विनावधीत मस्तु माविद्विषा वहै :—

(वेद)

हे जगदीश्वर, हम दोनों स्त्री पुरुष अपनी रक्षा आप करें। हम दोनों मिलकर इस पृथ्वीका उपभोग करें, मिलकर अपना पराक्रम करें, अपनी तेजः शक्ति लगावें। हम कभी आपसमें द्वेष न करें।

सृष्टि ही समष्टि रूपा है। मनुष्यका शरीर सम्मिलित रूप है। यदि सृष्टिसे पञ्च तत्वोंको अलग कर दें तो सृष्टिका यह रूप ही

न रह जावेगा। यदि परमाणु मिल न जायं तो सृष्टिका कहीं पता भी न लगे। वेदान्तका पंचीकरण भी इसीलिये प्रसिद्ध है। उसका कहना है कि ये पांचों पदार्थ भी स्वतन्त्र नहीं किन्तु सबसे सबकी समष्टि है। ईश्वर स्वयं भी प्रकृतिसे संवलित है। इसलिये यह असम्भव है कि विना एकताके एक पल भी कोई ठहर सकता है। पर एक हम भारतीय ही हैं जो इस प्रकृतिके विरुद्ध चलकर संसारमें ठह- रना चाहते हैं।

भाषा, भाव, भेश, भोजन, भजन, इनकी एकतासे ही सच्ची एकता हो सकती है। और इनके भेदसे ही देश और कौमका नाश होता है।

भाषा।

आज हमारी भाषा भिन्न है। यद्यपि हिन्दी साहित्य सम्मेलन, एक लिपि विस्तार परिषद्, राष्ट्र-भाषा सम्मेलन इत्यादि सभाय जगह जगह और समय समयपर होती रही हैं और सभी विचार-शील पुरुष एक भाषा होनेकी पुकार भी मचाते हें पर हिन्दी माताके सामने उर्दू बीबी भी तो बराबरीका आसन मांगनेको खड़ी हो जाती हैं। यद्यपि यह देश इंगलिस्तान नही है उर्दुस्तान नहीं है बलिक हिन्दुस्तान है। यहाकी भाषा भी हिन्दी ही होनी चाहिये पर पराधीन जाति कुछ कर नहीं सकती है। इसीलिये उर्दू बीबीकी चोट भी हमे सहना पड़ता हैं। प्रान्तिकता भाषाके एक न होनेसे ही बढ़ती जाती है। बङ्गाली, मंद्रासी, सिन्धी, पञ्जाबी कोई

भी रोटी वेटीका सम्बन्ध नहीं कर सकता है। जबतक रोटी वेटीका सम्बन्ध न रहेगा या भेश-भाव एक न हो लेगा, तबतक एकताका नाम लेना विडम्बना मात्र हैं। हिन्दी; जिसके समझनेवाले १८, २० करोड हैं और बोलनेवाले १३ तक हैं उसे राष्ट्र भाषा न बना कर हम अपने ही हाथसे अपने पैरमें कुठाराघात करते हैं। आज यूरोप मात्रकी राष्ट्र भाषा अंग्रेजी हो रही हैं पर हमारे एक ही देशमे सैकड़ों भाषायें हैं। यद्यपि हिन्दीके ऊपर लोगोंका ध्यान गया हैं पर दुःख है कि प्रान्तिकता अभी ज्यो की त्यो है,। बढी नहीं तो घटी भी नहीं है।

भाव।

हिन्दू, मुसलमान, क्रिस्तान सभी चाहते हैं अपने भावका सिक्का भारतपर जमाना। मुसलमानोंमे भारतीय भावका नितान्त अभाव है, रहेंगे भारतमें इसीके जल वायुसे पलेंगे। इसी देशके उनके पूर्व पुरुष थे और शायद उनकी सन्तान भी इसी देशकी जल वायुसे पलेगी, फलेगी, फूलेगी, पर वे सपना देखते हैं अरबका चन्दा इकट्ठा करेंगे खिलाफतके लिये और टोपी पहनेंगे तुर्की (यद्यपि तुर्कों ने इस टोपीको ठुकरा दिया) यह अप्राकृतिक है कि ऐसे देशद्रोही देशमें ठहर सकेंगे। कानून एक, जल वायु एक, सस्ती मंहगी एक, अकाल महामारी एक, प्रकृति एक, दशा एक पर मजहब भिन्न रहनेकी वजह सभी तरह हम हिन्दुओंसे

अलग रहना अपना मज़हब समझते हैं। इन्होने भारतकी एकता डोरीको हमेशा तोड़नेकी कोशिश की है। देशको आगे बढ़नेमे सदा रोड़े अटकाते रहे।

हिन्दू हिन्दूसे भिन्न।

केवल यही नहीं कि हिन्दू मुसलमानमे ही भिड़न्त है। बल्कि हिन्दूमें भी जितने जीव हैं उतने शिर हैं। कोई तुम्बा फटकारता और अपनेको मुक्तिका अधिकारी समझता है। कोई मुंह रंगकर थीएटरका पात्र बनता, कोई भूत पूजता, तो कोई शराब और मांससे शक्तिका रूप देखता है। आर्य्यसमाजी, सनातनी, शिक्ख, जैनी, कबीरपन्थी, दादूपंथी, हुक्कापंथी, देवसमाजी, ब्रह्मसमाजी, वैष्णव, शैव, शाक्त इत्यादि न जाने कितने पंथ हैं, इनकी गणना करना कठिन है। अपनी अपनी डफली अपना अपना शंख ही रहता तो कोई बात नही थी। यहां तो आपसका वैमनस्य भी बराबर बना रहता है तो क्या हम एकताको सच्चेरूपसे देख सकते हैं? हां एक हिन्दूसभा या कांग्रेस ही हैं कि हमे एक सूत्रमें बांध सकती है। न तो सभी सभा सोसाइटियोकी गुटबन्दी अलग अलग ही रहती है। इधर खानपानने और भी भेद भावके बन्धनको कस डाला और एकताकी कमर तोड़ डाली।

यह दूसरी बात है कि एक साथ रहनेसे कुछ धक्कम धुक्की हो जाती है। आर्य्यसमाजी, सनातनी इत्यादि सभी आपसमें

लड बैठते हैं पर इसका यह अर्थ नहीं है कि जब तीसरेसे लड़ाई छिड़े तौ भी हम छत्तीस ३६ बने रहें ६३ तिरसठ न हों।

जब युधिष्ठिरादि पांचो पाण्डव वनबास कर रहे थे। द्रौपदी उनके साथ थी। दुर्योधनादि दुष्टोंको इच्छा हुई कि हम चल कर पांडवोंको वनमें और भी तङ्ग करना शुरू करें। तदनुसार सेना लेकर चल पड़े। बीचमें ही गन्धर्वोंके तालाब विन्दुसरमें स्नानादि करनेका विचार किया। रखवालेने पानी गन्दा करनेसे मना किया। घमण्डी दुर्योधनादिकोंने नहीं माना। रखवालेने चित्ररथको खबर दी। लड़ाई छिड़ गयी। गन्धर्वोंने सबको मारभगाया। और दुर्योधनको बांधकर ले चले।

युधिष्ठिरके दूतने आकर खबर दी कि "महाराज युधिष्ठिर, आपकी विजय हो! विना परिश्रमके ही आपके शत्रु-दुर्योधनको गन्धर्वोंने पकड़ लिया और उसे वे बांधकर लिये जाते हैं। भीम और द्रौपदी बड़े प्रसन्न हुए। दोनोंने कहा अच्छा हुआ। दुष्ट दुर्योधनने अपने कियेका फल पाया।"

पर महाराज युधिष्ठिरने कहा कि यह बात हमलोगोंके लिये बड़ी लज्जाकी हुई। अर्जुनसे कहा कि तुम जल्दी जाओ भैया दुर्योधनको गन्धर्वोंके हाथसे जल्दी छुड़ा लाओ। क्योंकि;—

वयं पंच वयं पंच वयं पंच शतञ्चते।
परैरारोम्पमाशेतु वयं पंचयतानिवै॥

अर्थात् जब हमसे और दुर्योधनादिसे लड़ाई होती है तो हम

पांच हैं और दुर्योधनादि सौ भाई है पर तीसरेसे लड़ाई छिड़ने पर हम एक सौ पांच भाई हैं।

बड़ा अच्छा दृष्टान्त है। हमे भी जब तीसरेसे मुकाविला हो तो सभी भेदभाव छोडकर तिल तण्डुलकी तरह नही बल्कि सित शर्कराकी तरह एक हो जाना चाहिये। पीछे आपसमे निपट लेना चाहिये।

हमे तो नारङ्गीकी तरह न रहकर खरबूजेकी तरह रहना चाहिये अर्थात् ऊपरसे चिकने चुपड़े रहनेपर भी मीठे नेबूकी तरह हृदयकी फांक अलग नहीं रहना चाहिये बल्कि, खरबूजेकी तरह फांक रहते भी हृदयबीज एकमे एक जुटे रहना चाहिये। वेद भगवान भी यही आज्ञा देते हैं कि—

समानीवाकूतिः सामनं मनः समावा हृदयानिवः।

अर्थात् तुम्हारी एक आवाज हो, एक मन हो और एक हृदय होना चाहिये।

एक लकडो अपनी ज्योतिको कभी नहीं बढ़ा सकती बल्कि धुंआ दे देकर ज्योति जगाने वालेकी आंख भी पानीसे भर देगी। पानीकी सभी बूंदे जब मिल जाती है तो बड़े बड़े पेडको भी जडमूलसे उखाड़ फेंक देती है।

हमारी बिखरी हुई क़ौम भी यदि मिल जाय तो इसे आँख देखानेवाला कोई भी नही हो सकता है। पर जो भेद भावका पुतला है जहां भेद भावको ही धर्म्म कहते हैं, जहां तीन कनौ-

जिया तेरह चूल्हा प्रसिद्ध है और जहां छूतका भूत बराबर शिर-पर सवार है वहां एकताशक्तिका जिक्र करना ऊसरभूमिमे बीज बोना हैं, या आकाशसे दूध मांगनेके बराबर है।

उपनिषद्‌कारने इसके विषयमें बड़ा ही सुन्दर उदाहरण दिया है :—

यथा सोम्य मधुकृतो निस्तिष्ठन्ति
नाना त्ययानां वृक्षाणां रसान्
समव हारमेकतां रसं गमयन्ति ते
यथा तत्र न विवेकं लभन्ते
अमुष्याहं वृक्षस्य रसोस्म्य
मुष्याहं वृक्षस्य रसोस्मीत्येव
मेव खल्वेमाः सर्वाः प्रजाः सतिसम्पन्न
विदुः सति सम्पद्यामह मिति ॥

अर्थात् जैसे मधु मक्खियां एक ही छत्तेमे ऊंच नीच भले बुरे सभी वृक्षोंसे मिठास ले लेकर इकट्ठी करती हैं। और वे रस एक साथ रह कर यह नहीं खयाल करते कि अमुक वृक्षके हम रस हैं या अमुक वृक्षके। वे तो एक जगह रहनेसे समझते हैं, कि हम एक छत्तेके रहने वाले एक ही रूपके हम हैं। इस छत्तेके घर

सभी हमारे हैं। हमारी रानी मक्खी एक है। इस छत्तेमे कोई आपत्ति आयेगी तो हम सब मिट्टीमे मिल जायंगे।

है तो यह जीवसम्बन्धी वाक्य पर इसमें राष्ट्रीयता कूट कूट-कर भरी है। कहनेका तात्पर्य यह है कि जैसे हम एक ही देशके रहने वाले अनेक प्रकारके मनुष्य–मूर्ख, विद्वान, धनी गरीब छोटे बड़े स्त्री पुरुष हैं। हमारे लिये यह भारत एक छत्तासा है। इसमे हम सब एक अधिकारके हैं। इसकी भलाई बुराईमे हम सब समान हैं। एक घर (प्रान्त, जिला या वर्ण) अलग अलग हैं तो क्या छत्ता तो एक ही है।

किसी कविने सच ही कहा है—

आपेदिरेऽम्बर पथं खलुराज हंसा।
भृङ्गाश्च भिन्न कुसुमांश्च सुखं समासुः॥
अन्ये च ये सरसि शुष्यति संययुस्ते मीनाः
क्वयान्तु सरसि प्रभवश्चयेषाम्॥

अर्थात् जब तालाव सूखने लगा तो राज हंस उसे छोड़कर दूसरे तालाबमे भागने लगे, रस चूसनेवाले भौंरे भी दूसरे फूलो-पर उड़ उड़कर जाने लगे। और जलपक्षियोने भी तालाबका साथ छोड़ दिया पर मछलियां कहती हैं कि हम कहां जांय ! हमारा तो इस तालाबमें ही जन्म हैं। इसीके हरे भरे रहनेसे हम भी सुख समृद्धि पाती हैं। इसके सूख जानेसे हमे भी सुखना

होगा। हमारी माताने भी इसीमे खेला और सुख किया। हम इसे छोड़कर कहां भागें ?

पर इन कवियोंकी सूक्तियां पड़ी ही रहीं, उपनिषद्के अमृतमय वाक्य दूर फेंके गये। स्वार्थियोंने आलसियोंने ठीक इसके उल्टा उपदेश देना शुरू किया:—

अङ्ग वङ्ग कलिंगेषु सौराष्ट्र मगधेषुच।
तीर्थ यात्रां विना गत्वा पुनः संस्कार मर्हति॥

अर्थात् अङ्ग (विहारका एक अङ्ग) वङ्ग (वंगला) कलिङ्ग (मंद्रास) सौराष्ट्र (मिथिला प्रान्त) मगध (मगह) इन जगहों में विना तीर्थयात्राके जानेसे फिर संस्कार करना चाहिये। तात्पर्य यह कि ये प्रदेश अपवित्र है वहां न जाना ? हां!! काहिलों, आलसियों, नीचों, यह किस धर्मशास्त्रका वाक्य है ? धर्म्मशास्त्रोंकी भी बेइज्ज़ती ? यदि इन प्रान्तोंके लोग तुमसे मिलें तब तो अवश्य उन्हें तुम नीच समझोगे ? तब तुमने अच्छा देशका खून किया। देशद्रोहियों, मन गढ़न्त श्लोक बनाकर ऋषियोंको बदनाम करना छोडो ? "सुखमस्तीति वक्तव्यं दश हस्ता हरीतकी' का जमाना निकल गया। अब समझना होगा कि देश हमारी मातृभूमि हे। उसके निवासी मात्र हमारे भाई है।

मानलीजिये कि किसी बड़े घरमे दस बीस कमरे हैं। उनमें भिन्न भिन्न प्रकृतिके अनेक भाई रहते हैं। और खूब आनन्दसे रहते हैं। संयोगवश उस घरमे आग लगी और वह आग घरके

कोनेमें लगी तो क्या और कमरे वाले सोचेगे कि मेरे कमरेमे आग नही लगी मैं उस आगको क्यों बुझाने जाऊं ? तब तो आग फैलते २ उनके कमरे तक भी आकर उन्हें चितापर चढ़नेका मजा देने लगेगी। अथवा मानलीजिये कि किसी तालाबमें किसीने जहरकी बूंदें डाल दी तो क्या कोई भी उसका जीव दम घुटकर मर जानेसे बच जायगा ? इसीतरह हमारा देश भारत है भारतीयमात्र हमारे भाई है, और यही हमारी जन्मभूमि है। यदि हम समझेंगे तब आप ही एकता हो जायगी।

समाज संगठन।

इस भावकी भिन्नताने हामरे समाज संगठनपर भी कुठाराघात किया। जितने पवित्र कार्य्य करनेवाले थे उन्हें हमने नीच समझा। उनके स्पर्शसे बचने लगे। इसका विषमय परिणाम जो हुआ वह सबपर विदित है। धूर्तोंने मनगढ़न्त श्लोक बना बना धर्मशास्त्रोमे घुसाकर अपना स्वार्थ साधन करना शुरू किया। मनु महाराजकी मिट्टी तो पलीद की ही इधर पराशरजीके ऊपर भी साढ़ेसाती शनैश्चरका धावा कराया। उसमे लिखा है कि:—

'संवत्सरेणयत्पापं मत्स्य धाती समाप्नुयात्।
आयो मुखेन काष्ठेन तदेकाहेन लांगली ॥'

अर्थात् एक मछली मारनेवाला मछली मार मार कर एक वर्षमें जितना पाप करता है उतना पाप एक दिन हल पकडने वाला कर

लेता है। 'धन्य हो देवता, आपने समाजमें अच्छी खलबली मंचाई।

पुराण इतिहासको देखनेसे पता चलता है कि हमारे श्रीराम और श्रीकृष्ण जीका महत्व इसीलिये सब अवतारोंसे अधिक है, कि उन्होंने समाज सङ्गठन किया। निषादराज मैत्री करनेको सामने आते हैं। श्रीरामजी उन्हे गले लगाते हैं। अभक्ष्य भक्षी जटायुबाबा उनकी धर्मपत्नीको सहायता देनेमे अपना प्राण गंवाते हैं, उन्हें गोदमें बैठाकर उनकी धूल जटासे झाड़ते हैं। और अपने पिताकी तरह उनकी तिलाञ्जलि देते हैं। क्षुद्रयोनिके वानरोंकी पूजा घरपर करते हैं। राक्षस बिभीषणको छातीसे लगाते हैं समाजसंगठित हो जाती है। भारतको सम्पूर्ण कौमका समान अधिकार हो जाता है। भारत भारत बन जाता है। एकताकी लहर चारों तरफ फैल जाती हैं।

जब युधिष्ठिर महाराज राजसूययज्ञ करनेको तैयार हुए तो श्रीकृष्ण भगवानने कहा कि यज्ञ पूरा होनेपर आप ही आप शंख बजने लगेगा। यज्ञ समाप्त हो गया। शंख नहीं बजा। पाण्डवोंकी चिन्ता बढ़ी कि श्रीकृष्ण भगवान्का कहना कभी मिथ्या नही हो सकता हैं। अवश्य ही कुछ त्रुटि हुई। इसीलिये शंख नहीं बजा।

पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान्ने कहा कि कोई भारी त्रुटि हुई है। इसी लिये शंख नहीं बजा। लोगोंने अपनी अपनी सफाई

दी और कहा कि बड़े बड़े याज्ञिक बुलाये। होता ब्रह्मा इत्यादि बड़े निपुणको बुलवाया। यज्ञमे कोई त्रुटि न होने पावे इसलिये बड़ी सावधानी रखी गई थी। हमारी समझमे नहीं आया कि कौन त्रुटि रह गयी है। कृपाकर आपही बतावें कि कौन त्रुटि रह गयी है? श्रीकृष्णजीने सोच समझकर कहा:— कि एक भारी त्रुटि रह गयी है जिससे यज्ञ पूरा नहीं हो सका। वह त्रुटि यह है कि एक हमारा भक्त वाल्मीकि नाम का चमार इसी हस्तिनापुरमें रह गया है जिसको आपने न कुछ खिलाया न कुछ पूछा। जबतक छोटेसे छोटेको भी न मिला लिया जाय तबतक कोई भी यज्ञ पूरा नहीं हो सकता। पांडवोंसे पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा कि स्वयं महाराज युधिष्ठिर उसकी झोंपड़ीमें जाकर निमन्त्रित करें और महारानी द्रौपदी रोटी बनावें। उसे आदर पूर्वक बुलाकर भोजन करावें तो उसके प्रत्येक ग्रासपर शङ्ख बजेगा।

पाण्डवोंने वैसा ही किया। उसके भोजनके प्रारम्भमें एक बार शंख बजा फिर नहीं बजा। युधिष्ठिरने उदास होकर पूछा कि भगवन् अब कौन त्रुटि रह गयी कि फिर शंख नहीं बजा। श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा कि आप लोगोंके हृदयमें कुछ कीना रह गया है। सबोंने अपनी सफाई दी। उसमें द्रौपदीजीने कहा कि हां, मेरे मनमें कुछ मलिनता आ गयी थी। रोटी बनानेके समय यह मैंने सोचा कि श्रीकृष्ण भगवान मुझसे चमारकी रोटी

बनवा रहे हैं। श्रीकृष्ण भगवानने कहा कि यही बड़ी भारी त्रुटि रह गयी है। मनसे भी शूद्रोंके प्रति ऐसा सोचना यज्ञका नाश करना है। इसलिये द्रौपदी उसबाल्मीकिसे क्षमा प्रार्थना करें तो उसके हरेक ग्रासपर शंख बजेगा। वैसा करनेपर सचमुच शंख हरेक ग्रासपर बजने लगा। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि किसी जातिका कोई भी यज्ञ विना छोटे बड़े सबको मिलाये पूरा नहीं हो सकता।

संस्कृतमे एक "अन्ध पङ्गु न्याय है।" इसकी उत्पत्ति इस प्रकार है कि एक अन्धा था और एक लंगड़ा था। दोनोका इच्छा हुई कि हम आम खाते पर शत यह है कि किसीका सहायता न लेंगे। इसी प्रतिज्ञाके अनुसार दोनोंने सलाह की मेरे अधेका पेर और तुम लंगड़ेकी आँख दोनों मिल जाय तो हम सब कुछ कर सकते हैं। ऐसा ही किया। खूब छककर आम खाया।

कहनेका तात्पर्य्य यह है कि जब पढ़े लिखे विद्वान् जो लंगड़े है हल कुदाल चला नहीं सकते और जो अपढ़ मूर्ख हैं जिनकी हियेकी आंख खुली नही है। यदि ये दोनों हृदयसे मिल जायं तो सब कुछ कर सकते हैं।

आज उल्टी बात हो रही है। दक्षिण मद्राससे एक ब्राह्मणके घरमें आग लगी। उसके आस पासमें छोटी कौमके लोग रहते थे। उन्होंने आकर उस ब्राह्मणसे निवेदन किया कि आप आज्ञा दे तो हम आपके घरकी आग बुझा दें। ब्राह्मणने कहा कि छोड़

दो घरको भस्म होने दो। पर तुमसे अपना घर नहीं छुलावेंगे। घर भस्म हो गया पर वेचारोसे ब्राह्मण देवताने सहायता न ली।

दुर्गा सप्तशतीकी दुर्गा।

सुरथ नामका एक राजा था। उसका राज्य कोल भिल्लोने छीन लिया। और उसे राज्यसे निकाल दिया। वह वेचारा बनमें घूमते फिरते एक समाधि नामके वैश्यके साथ वैशम्पायन ऋषिके पास पहुचा। ऋषिजीसे सुरथने पूछा कि--"भगवन् राज्यका लालच मुझे घेरे हुआ है। यह लालसा मेरी कैसे पूरी हो सकेगी।

वैशम्पायनजीने कहा—तुम्हारी ही तरह देवताओंका अधिकार दैत्योने छीन लिया था। देवताओको वे मारते कूटते भी थे। तब देवताओने इकट्ठे होकर सलाह की कि किस भांति हम लोग संघ शक्ति पैदा कर अपनी रक्षा करें।

सबोंने इकट्ठे होकर एक शक्ति पैदा की जिसके पास जो कुछ अस्त्र शस्त्र था उस शक्तिको दे दिया।

> एकस्थं तद्भून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा।
> तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः॥
> जयेतिदेवाश्चमुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम्
> चचाल वसुधा जेलुः सकलाश्च महीधराः।

अर्थात् जब देवताओंने एक शक्ति पैदाकी तो वह शक्ति अपने तेजसे चारो ओर फैल गयी। आपसकी एकता शक्तिको देखकर देवता बड़े प्रसन्न हुए। जय जयकार करने लगे। देवताओंकी एकता सुनकर मारे दहसतके पृथ्वी (सभी देश) काप उठी। पर्वत हिल गये। समुद्री शक्ति काप उठी।

उसी शक्तिका नाम दुर्गा देवी हुआ। उसके हुकार मात्रसे देवताओंको दुःख देनेवाले महिषासुर इत्यादि घबड़ाने लगे। उसने महिषासुर, सुम्भ निसुम्भ सबको परस्त किया। एकता बल पाने हीसे देवताओंके शत्रु मारे गये। वैशम्पायनजीने कहा कि राजन् तुम भी ऐसा ही करो तो फिर अपना राज्य पा सकोगे।

श्रीरामानन्दजी अपने शिष्योंके साथ काशी दशाश्वमेध घाट पर स्नानको जा रहे थे। रास्तेमें एक भंगी सो रहा था। स्वामी रामानन्दजीका पैर उसकी देहमें लग गया। उन्होंने राम राम कह पीछे हट करपूछा कि तू कौन है? भंगीने उत्तर दिया "मैं भंगी हूं।" तब तो स्वामी बड़े असमंजसमें पड़े। भंगी को यह भाव मालूम हो गया। उसने पूछा कि किस चिन्तामे पड़ गये। मुझसे छुआनेकी? तुम कौन हो? शिष्योंने बड़े गर्वसे उत्तर दिया कि "ये ही स्वामी रामानन्दजी हैं। तुमने क्या स्वामीजीका नाम नहीं सुना है? भंगीने उत्तर दिया कि नाम तो मैंने सुना है पर यह नहीं जाना था कि स्वामीजीके हृदयमें एक भंगी बैठा है। मैंने तो आजतक यही समझ रखा

था कि शवरी, गीध, अजामिल गणिका, निषाद इत्यादिको हृदयमें धारण करनेवाले श्रीरामजी इनके हृदयमे वसते हैं।" बस, स्वामीजीका हृदय पटल खुल गया। चेत गये। उसी दिनसे चेता चमार, रैदास, नाभादास, डोम इत्यादिको भी अपना शिष्य बनाया? उनका आदर किया।

पहलेके महात्मा ढकोसलेबाज नहीं थे। सच्चे और सहृदय थे। स्वामी शङ्कराचार्य्यके सम्बन्धमे भी ऐसा ही किम्वदन्ती सुननेमे आता है। महात्मा नानकशाहजीने तो और भी उदारता दिखायी था। अन्तिम गुरु श्रीगुरु गोविन्दसिंहजीने तो केवल अमृत छका कर ही लाखों चूडे, कोरियोंको अपने मजहबमें मिलाया। ख्याल रहे! श्रीगुरु खड्गबहादुरजीकी लाश एक भगीने ही वीरता पूर्वक ला दी थी। फल भी उस समयके महात्माओंको अच्छा मिला। प्रवल सम्राट् औरंगजेबका तख्त जोरोंसे हिला दिया। भारत वसुन्धराका शिर ऊंचा कर दिया।

अब ठीक इसके विपरीत है। लोगोंने अपनी टोली बनाकर, "बातोंकी तोप नज्मकी बन्दूक चला दूं। फिकरेकी सफाईसे कहो जो उड़ा दूं।" के न्यायसे पर्वतको फूंक कर उड़ा देना चाहते हैं।

एक समय एक व्याख्यान दाता बड़े जोरदार शब्दोंमें कह रहे थे कि "हम भारतीय अगर थूके दे तो विदेशी उसमें वह जायेंगे।" वहां ही वैठा हुआ एक आदमी कह वैठा कि "तुम

थूकनेके लिये एकट्ठे तो होओ।" सचमुच थूकनेके लिये कौन कहे शिर खुजलानेके लिये भी हम ऐसी स्थितिमें इकट्ठे नही हो सकते।

महा भारतमें एक जगह सुन्द उपसुन्दकी कथा आई हैं। उन्होंने तपस्या कर यह वरदान मागा कि हमारी मृत्यु किसीसे न हो। उन्हें वरदान मिल गया। वरदान पाकर वे लगे देवताओंको मारने कूटने। देवताओंकी सभा वैठी। उन्होंने यही ठहराया कि ये दूसरोंसे नहीं मरते हैं तो इनमें आपसकी फूट लगा दो। ये दोनों भाई आपसमें ही लड़कर मर जायंगे। यही हुआ भी। परम सुन्दरी स्त्री आई। एकसे विवाह करनेकी सलाह की। उस स्त्री से विवाह करनेके लिये ही दोनो भाइयोंमें मनमुटाव हुआ। यह मनमुटाव इतना वढ़ा कि आपसमें दोनोंके लोहे ठन गये। एक दूसरेको मारकर दोनों ठंढ़े पड गये। ऐसे ही हमारी समाजमें रोज ही विपक्षियोंमें ठनती है। हम एक दूसरेके शत्रु होते जाते। और हम आपसमे मजहबकी ओटमे लड़ते लड़ते पिटते और पिटाते हैं। यदि एकता न करेंगे तो सुन्द उपसुन्दकी तरह मारे जायेंगे।

वहुत लोग तो तारीफके लालचमें आकर अपने देश, समाज सबके घातक वन जाते हैं। एक किसानने जैसी तारीफ करके चारको मारा। चारों मारे गये। वैसे ही हमारे भाई भी तारीफमें फूल कर आपसमें फूट डालते हैं। ये भी देश, समाज तथा धर्मके घातक हैं।

भेस (वेश)

दुःख है कि जिस भांति भाषाके एक न होनेसे हम एक दूसरेके भावको नहीं समझ सकते हैं वैसे ही भेषके एक न होनेसे प्रेममें विघात होता है। मैंने कलकत्तेमें अपनी आंखों देखा है कि एक मारवाडी बंगाली वेशमे मारवाड़ी बासेमें खानेके लिये गया। मारवाड़ी ब्राह्मणने उसे दाम देनेपर भी खाना देनेसे इनकार किया। बेचारा कितना ही मारवाड़ी भाषामें ब्राह्मणको समझाता रहा पर मारवाड़ी ब्राह्मणने नहीं माना। फौजमे तो लाचारी एक वेश रखना मजबूरी होती है। वैसा न किया जाय तो अनर्थ हो जाय। अपने ही दलके लोग अपने दलके आदमीको मारने लगे।

इस. ये हमारे हिन्दू शास्त्रोंमे शिखा सूत्रकी इतनी महिमा है। प. हमारे फैशनेबल बाबूने शिखासूत्रसे भी छुट्टी मांग ली। तीर्थोंमें मन्दिरोंमें या और धार्मिक कार्य्योंमें इसका खयाल किया भी जाता था तो अब उसकी पूछ नहीं

सिन्धी या गुजराती अपनी लम्बी पागवालोसे स्वत प्रेम कर लेता है। पंजाबी अपने साफा संयुक्त प्रदेश तथा बिहारमे खिचड़ी वेश, बंगालमें शिर नंगा वेश बड़ा ही खटकता है। भारतके सुदूर पश्चिममें बडी बड़ी पाग, उससे पूरब पंजाबमे छोटी पाग, उससे पूर्व वेश वाड़ेमें छोटी पगड़ी, उससे पूब

काशी प्रान्त या बिहारमें टोपी और उससे पूर्व बंगालमे वह भी सफाचट। क्या यह राष्ट्रियताका चिह्न है ?

एक अङ्गरेज़की पोशाक देखकर आप अनुमान कर सकते हैं बिना पूछे ही कि यह अङ्गरेज है। एक जू या पार्शोको बिना पूछे समझ सकते हैं कि यह पारसी है। पर हम हिन्दुओंको कौनसा चिह्न है जिससे आप एक हिन्दूको बिना पूछे बता सकते हैं कि यह हिन्दू है। बल्कि थोड़े दिनोंसे हमारे नवजवानोंने अब अपना देशी पोशाक भी छोड़ना शुरू किया और युरोपियन ड्रेसको खुशी खुशीसे अपना रहे हैं।

खयाल रहे। हमारे टर्कोंके राष्ट्रपति मूर्ख नही हैं कि उन्होंने सम्पूर्ण देशको एक वेशमें देखना पसन्द किया। उन्होंने सोचा कि हमारे देशकी लचर पोशाक हटा दी जाय और सभी एक पोशाक पहने। हम भी यही चाहते हैं। चाहे गान्धीनुमा टोपी और कुरता हो या पंजाबी पोशाक हो चाहे लाला शाही हो। कोई हो। किसी खास पोशाक पर मेरा लक्ष्य नहीं है बल्कि एक पोशाक पर लक्ष्य है। वीर वेशसे लक्ष्य है। अब खलीतेदार पैजामाका जमाना जाता रहा। अब चौतनी या वीर वेशका जमाना आ गया है।

इधर परदेने और भी एक समूहको ही हमसे अलग कर दिया। मुसलमानोंमें बुरका और हिन्दुओंमें घूंघट। इस घूंघटने हमें स्त्री-समाजसे दूर फेंक दिया। हम उन देवियोंके भावसे बिलकुल

कोरे रहते हैं। आखिर बच्चोंके सस्कार तो उन्हींके हाथमें है और भाई भाईमे प्रेमका श्रीगणेश भी तो वहांहीसे होता है।

श्रीरामचन्द्र बनको जा रहे हैं। भगवती जानकी माताको साथ चलनेका हुक्म हो चुका है। जल्दी जल्दी बन चलनेकी तैयारी हो रही हैं। उसी समय एक राजकुमार कोनेमें खड़े होकर आंसू भरी आंखोसे श्रीरामकी ओर देख रहा है। मारे दुःखके कंठावरोध हो गया है। थोड़ी देरमे श्रीरामकी नजर रोते हुए अपने छोटे भाई लक्ष्मणपर पडती है। दौड़कर श्रीलक्ष्मणजीको गलेसे लगाते हैं। रोते हुए कहते हैं कि भैया लक्ष्मण मैं अपने ऊपर गिरते हुए वज्र सह ले सकता हूं पर तुम्हारी आंखोंके आंसू नही सह सकता। बताओ तुम्हे क्या दुःख है? उसे मैं प्राण देकर दूर करूं।

श्रीलक्ष्मणकी हिचकियां बंध जाती हैं। रोते हुए कहने लगते कि "रोऊं नहीं! जिसके साथ मैं छायाकी तरह रहता था वह मुझे छोड़कर चौदह वर्षोंके लिये बनको जा रहा है और साथ चलनेका आदेश नही देता है तो मेरा जीवन ही किस लिये इस संसारमें रहेगा?

श्रीरामजीने कहा कि भैया पिता माता वृद्ध हैं। उन्हें समझाने वाला कोई नही। भरत शत्रुघ्न यहां नहीं हैं। तुम्हीं एक आधार हो। तुम भी यदि अयोध्या छोड़ दोगे तो कौन विकल पिता-जीकी सहायता करेगा। लक्ष्मण जो कुछ उत्तर दिया वह भाई भाई प्रेमका स्वर्णमय उदाहरण है।

आपने कहा—

मैं शिशुप्रभुसनेह प्रतिपाला।
मन्दर मेरु किलेहि मराला॥
गुरु पितु मातु न जानौं काहू।
कहौं सुभावनाथ पति आहू॥
जहंलगि जगत सनेह सगाई।
प्रीति प्रतीति निगम निजगाई॥
मोरे सबै एक तुम स्वामी।
दीनबंधु उर अंतरयामी॥

—तुलसीदास।

श्रीरामजीने देखा। लक्ष्मण मानेगा नहीं। आज्ञा दी कि जाओ अपनी मातासे आज्ञा ले आओ। श्रीलक्ष्मणजीको विश्वास था कि मेरी माता भाईका प्रेम जानती है। प्रसन्न चित्त हो चले। अभी सुमित्रा देवीके पास पहुचे भी न थे कि दूरसे ही माता सुमित्राने कहा,—"बेटा अभी तुम यहा ही हो ?

जो पै सीयराम बन जाहीं।
अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥
तुम्हरे भाग राम बन जाहीं।
दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥

—गों० तुलसीदास।

* श्लोक *

रामं दशरथं विद्धिमां विद्धि जनकात्मजाम् ।
अयोध्या मटवीं विद्धि गच्छ पुत्र यथा सुखम् ॥

अर्थात् रामको दशरथ समझाना। जानकीको मुझे समझना और वनको आयोध्या समझना। बेटा, तेरे लिये सबही प्रकार सुख ही सुख है।

माताने मातामा आदर्श देखा दिया। बेटेने भाईका आदर्श देखा दिया। इसे कहते हैं भाईका प्रेम। घरकी एकता। परिवार भरकी एकता।

क्या फिर भी भारतके घर घरमे यह एकता देख पड़ेगी? हां, देख पड़ेगी जब मातायें, देवियां भी इस एकताका महत्व समझ लेंगी।

इहि आशा अंटकेउ रह्यौ अलिगुलाबके मूल।
होइहैं फेरि बसन्त ऋतु इन डारिन वे फूल॥

—बिहारी।

इसलिये आओ भाइयो, हम एक प्रेमसूत्रमे बंध जायं। मजहब या गृह कलहकी जहरीली आगकी लपटका आलिङ्गन मत करो। मजहब तो ईश्वरकी उपासनाकी वस्तु है। वह तो हमेशा था और रहेगा। उसके लिये श्रुति भी कहती है—एकं सद्विप्रा बहुधा

वदन्ति।" अर्थात् ब्रह्म तो सदा सर्वदा एक है। तौभी विद्वान् लोग उपासनाकी सुगमताके लिये अनेक प्रकारके मानते हैं।

रुचीनां वैचित्र्या दृजुकुटिल नाना पथयुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

—महिम्नःस्तवराज।

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति॥

—विष्णुसहस्र नाम।

अर्थात् रुचिकी विचित्रता है। भिन्न रुचिर्हिलोकः भिन्न रुचि हीका नाम लोक है। किसीकी रुचि खट्टा खानेकी, किसीकी रुचि मीठी वस्तु खाने और किसीकी कडुआ। इत्यादि। ऐसे ही मनुष्य अनेक रास्तासे आवे पर सबके लिये समुद्रकी तरह पर ब्रह्म एक ही है। उद्देश्य एक ही है। नदिया एक घाट वहुतेरे।"

ऐसे ही जैसे आकाशसे जल चाहे किसी देशमे गिरेगा अन्तमे समुद्रमे ही पहुचेगा। वैसे चाहे किसी भातिसे आवो, सनातनी, आर्य्य समाजी, जैनी शिक्ख, कबीरपंथी, देव समाजी, ब्रह्म समाजी या खुदाई और ईसाई किसी प्रकारसे उपासना करो सबका उद्देश्य एक ही है। इसलिये कोई मज़हववाले किसी मज़-हवकी निन्दा करते हैं तो पाप करते हैं। हां, अपने मज़हवकी तारीफ़ भले ही करें। यह नही कि जो हमारे सम्प्रदायको

नहीं मानता वह काफिर है, (नास्तिक है) उसे कत्ल कर देना चाहिये। यह क्षुद्र विचार है।

एक बात और भी है कि मेरे धर्म्म या सम्प्रदायकी जो हो हानि करेगा चाहे प्रत्यक्ष रूपसे चाहे अप्रत्यक्ष रूपसे उसे हम सह नहीं सकते चाहे जो हो। इससे भी एकतामें भङ्ग नही हो सकता।

ऐसे ही घरका कलह भी समझ लीजिये। दुर्योधनने दुश्शासनको हुक्म दिया कि "द्रौपदीको हमने जीत लिया। उसकी चोटी पकड़कर घसीट लाओ।" दुश्शासनने वैसा ही किया। अपने ही घरकी लज्जाको वह घरसे निकालने लगा। मानो उसी दिन भारतकी लक्ष्मीकी चोटी पकड़ी गई। इस गृह कलहने भारतके जीवन ही मृतावशेष कर दिया। दोनो कुलका नाश हुआ।

पृथ्वीचन्द, जयचन्द, राजा मानसिंह और राणाप्रताप, इत्यादि सहस्रो उदाहरण पड़े हुए हैं कि जिनमे फूटका फल हमे खूब खिलाया और उसका प्रत्यक्ष फल हमको मिल रहा है। इसलिये आओ भाई अपनी मातृभूमिके लिये, धर्म्मके लिये समाजके लिये एकता देवीकी पूजा करें, स्वदेशी वस्त्रसे उसकी आरती उतार। हृदय कमलको उसे चढ़ावे।

शुभम् भूयात्।

※ दूसरा सोपान ※
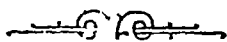
ब्रह्मचर्य्य और संध्या कर्म्म । २५ ।

ब्रह्मचर्य्य प्रतिष्ठायां वीर्य्य लाभः

बनों ब्रह्मचारी, बनों शक्तिशाली ।
गिरा आर्य्य गौरव उठाओ उठाओ ॥

हमारे हिन्दू धर्म्म शास्त्रोंके अनुसार शरीरकी चार अवस्थायें की गई हैं—ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। इन चारोंका अलग अलग नियम विधि है। यहा केवल ब्रह्मचर्य्य पर विचार किया जायगा। ब्रह्मचर्य्यके तीन भेद हैं—विद्याध्ययन, वीर्य्य रक्षा और तपस्या। यम नियम इत्यादिके साथ कुश हाथमें ले गुरुकी आज्ञामे रहता हुआ सोलह वर्षोंतक विद्याध्ययन करना चाहिये। जो आजीवन ब्रह्मचर्य्यसे रहना चाहें उनके लिये सोलह वर्षोंका नियम नहीं है। इसी समय वीर्य्य रक्षा भी करना चाहिये और उसके लिये तपस्या भी। विद्याध्ययनका प्रकरण एक स्वतन्त्र रूपसे इस पुस्तकके अगले सोपानमे दिया जायगा। यहां केवल वीर्य्य रक्षा और तपस्या इन्हो दोनोंपर विचार किया जायगा।

यह लोकोक्ति है कि "मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु रक्ष-

पात् ।" इसी वीर्य्य विन्दुको फेंक देनेसे जल्दी ही मृत्यु हो जाती या जिन्दे मरा हुआ प्राणी रहता है और इस विन्दुकी रक्षा करनेसे तेजस्वी, वलशाली और जीता जागता धर्म्ममूर्ति वन आता है।

आज हमारे पाठशालाओं, स्कूलों और कालिजोंमें ब्रह्मचर्य्यकी पूर्णाहुति हो रही है। अबोध बालक बालिकायें अपने जीवन प्राणको अपने हाथसे खोकर स्वास्थ्यके भिक्षुक हो केवल शरीर का सांचा लिये दीख पड़ते हैं। उनकी धसी आंखें चिपके गाल, फटा गला और झुकी कमरको देखकर तरस आती है। अध्यापक, विद्यार्थी, बड़े छोटे ऊँच, नीच, स्त्री पुरुष सभी इस दुर्व्यसनके शिकार हो रहे हैं। जब प्रमेह, सुजाक, गर्म्मी, मचली, मन्दाग्नि, पेचिस इत्यादि बीमारियां इनपर धावा करती तो वैद्योंके पास पहुचते और वैद्य भी येन केन प्रकारेण बीमारीमें कुछ फायदा पहुचा कर छुट्टी ले लेते। क्योंकि वैद्य दवा कर सकते हैं पर आदत थोड़े छुड़ा सकते या शिथिल हुए शरीर यन्त्रको थोड़े ही कस सकते हैं? वह एक तरफ रज वीर्य्य रोकेंगे दूसरी तरफ बांध फूट जायगी, शुक्र प्रमेह या आंखकी चर्वी बढ़ेगी और मन्द दृष्टि हो जायगी। फिर जन्म भर दवा फांकते रहिये प्रकृत पक्षमे कुछ होने जानेको नहीं।

वीर्य्यका दूसरा नाम मनोज, मनोभव इत्यादि भी है। इसका मनसे पूर्ण सम्बन्ध है। एकान्तमे, पर्वतके कन्दरामे, घोर वनमें वैठे रहिये जबतक मनपर काबू न रहेगा आपका पीछा वहां भी

विषय वासना करेंगी, सतावेगीं, पागल करेगी, मति मार देगी। इसलिये जैसे शरीरकी दवा की जाती है मनकी भी दवा होना जरूरी है। उसके लिये उपदेश, सत् शिक्षा और तपस्या ही वढ़िया दवा हो सकती है।

आजकल जहां देखो, स्कूल कालिजोंमें वाहर भीतर, गली कूचेमें राजनीतिकी ही चर्चा चल रही है। नवयुवकोंको देश रक्षाके लिये पुकारा जाता है पर राजनीतिके वाप मा ब्रह्मचर्य्य या तपस्याके लिये तो कोई पुकारता ही नहीं। खयाल रहे विना वाप माँके सन्तानकी पैदाइश नहीं होती? और ब्रह्माके जैसी मानस सन्तान उत्पन्न करना चाहते हो? विना तपस्या या ब्रह्मचर्य्यके ब्रह्मा वावा भी कुछ कर न सके।

यह मैं नहीं कहता कि आप नवजवानोंको माताकी पुकार सुननेके लिये आह्वान न कीजिये, मैं यह भी नही कहता हूं कि आगे वढ़नेके लिये उनकी पीठ न ठोकिये यह सव कीजिये पर जीनेका या वलि वेदीवर डटे रहनेके लिये भी तो कुछ यत्न कीजिये? ये वीर्य्यहीन तपस्या रहित भेड़ें क्या करेंगी? थोड़े भी कष्ट पडनेपर इनके देवता कूचकर जायेंगे, इनकी पशुलियां चटक जायगी, ये बेहोश होकर जमीनपर लोट जायेंगे। इसीलिये माता श्रुतिने ऊँची आवाजसे कहा है कि—"ब्रह्मचर्य्य प्रतिष्ठायां वीर्य्य लाभः"।

हमारे वैद्यक शास्त्रने लिखा है "सोयं रसो मासेन शुक्रीभवति" अर्थात् खाये हुए अन्नके रसादि छओं तत्वो या धातुओ

के तत्व खींचने पर १ महीने पर वीर्य बनता है। वह इस प्रकार है :—

रसाद्रक्तं ततोमांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदसोऽस्थि ततोमज्जा मज्जायाः शुक्रमुच्यते॥

अर्थात् खाये पीये हुए अन्न जलसे रस बनता है, रससे रक्त, रक्तसे मास, मांससे मेदा, मेदासे हड्डी, हड्डीसे मज्जा, और मज्जासे वीर्य्य बनता है। जैसे जस्तेसे लेकर लोहा, तांबा, सोना और अन्तिम सर्वोत्तम धातु पारा कहा जाता हैं वैसे ही सप्तमोत्तम धातु वीर्य्य है।

जैसे लैम्प या चिरागका तेल, दूधका मक्खन या औषधियोका रस खैंच लेनेसे वे निकम्मे हो जाते हैं उसी भांति शरीरके तत्व वीर्य्यको निकाल देनेसे शरीर निस्सार हो जाता है।

रस इक्षौ यथा दध्नि घृतं तैलंतिले यथा।
शुक्रं प्रच्यवते स्थानात् जलमाद्र पटादिव॥

अर्थात् जैसे ईखसे रस निकल जानेपर वह निकम्मी हो जाती है, जैसे मक्खन निकाला हुआ दही और तेल निकाली हुई तिल निस्सार समझी जाती है वैसे ही वीर्य्यहीन यह शरीर व्यर्थ समझा जाता या रोगोका अखाड़ा समझा जाता है। जब शरीरसे वीर्य्य स्खलन होता है तो जैसे भीगे कपड़ेको निचोड़नेमे उसे ऐंठ कर दबाते हैं वैसे ही शरीरसे वीर्य्य निकालनेमें सम्पूर्ण

शरीरको निचोड़कर बाहर फेंकना पड़ता है। जबरन् ऐसे रक्तको निकाल फेंकनेमे ही आजकल मजा समझा जाता, हायरी बुद्धि! साधारण रक्त जो मुक्ति भक्तिमे काम न आयगा उसकी रक्षा तो प्राण दे कर करते पर जिस शरीर रक्तसे भक्ति मुक्ति ज्ञान सब कुछ मिल सकती उसके फेंकनेमे हम अपना मजा समझते हैं।

सावधान, यह वीर्य्य वह धातु नहीं है जो निर्जीव या जड़ पदार्थ ही मात्र हो? इसमे ज्ञान विज्ञान मन बुद्धि सभी भरे है। ऐसा न होता तो इन रजवीर्य्योंसे उत्पन्न सन्तानमे पिता माताके मुखाकृति भाव भंगी इन्होके द्वारा सन्तान कहांसे आती? इससे सिद्ध हुआ कि एक रजवीर्य्यके खो देनेसे मानो आपने सब कुछ खो दिया। क्योंकि यह सिद्धान्त है कि "नाभावो विद्यते ऽसतः अर्थात् जिसमे जो वस्तु नहीं रहती है उससे उत्पन्त वस्तुमे वह प्राण नहीं आ सकता है।

दुःख है कि हमारी सन्तानें आज अंधी होकर इसी विषय-वासनाके भयानक पथमे धडल्लेसे दौड़ रही हैं। जिस दुर्गुणसे युरोपके भावुक लोग अपने देशके नौनिहालोके सम्बन्धमे घोर चिन्तामें पड़े हुए हैं वही दुर्गुण भारतमें घर करता जाता है। बाल-हत्या, भ्रूण हत्या, आत्म हत्या जैसे घोर पापसे भी हमारे नौजवान या युवतियां नही घबड़ाती हैं।

अल्पायु होना पागल होना, धड़का उठना, मूर्छा आना, मृगी आना, राज यक्ष्मा, दम्मा इत्यादि भयानक रोग होना इसके

लिये आसान बात है। एक संस्कृत कविने क्या ही अच्छा कहा है —

> शिक्तं प्रीति भरैर्हिमैः
> सुमधुरैर्नीरः श्रमैश्चार्जितैः
> रुद्धं प्रस्तर कुड्य कंरकतृणै
> कृत्वा लवालैश्चितम् ॥
> किम्वृक्ष त्वमसाम्प्रतं
> निपतितो हीनः प्रसूनैः फलैः
> स्वामीन्, सर्वमनुष्टितं
> नहि कृतं मूलं दृढ़ं तत्फलम् ॥

अर्थात् कोई वृक्ष हवाके झोंकेसे विना फूले फले ही गिर गया। उसके स्वामीने उसके पास आकर वृक्षसे कहा कि,— "मेरे प्यारे वृक्ष, मैंने तो तुझे बडे परिश्रमसे सुमधुर, ठंढे जलसे प्रेम पूर्वक सींचा। पत्थर काठ और कांटोंसे इस लिये रूंधा कि कोई तेरे ऊपर हरकत न पहुंचा सके। चारों ओरसे आल-वाल बनाकर तेरी हिफाजत की पर हाय! तू विना फूले फले ही गिर गया? इसपर वडे बड़े ही वृक्षने कहा कि—स्वामिन्, आपने सब कुछ किया पर मेरी जड़ मजबूत नहीं को। इसीका यह फल हुआ।

यह उदाहरण हमारे नवजवानों पर अक्षरश घटता है। उनके पिता माता दिन रात परिश्रम कर, शिरका पसीना एड़ी तक वहा उनके शारीरिक मानसिक अध्यात्मिक सब तरहकी उन्नति करनेमें कोई यत्न उठा नही रखते। दूधसे नहवा देते हैं, घीसे तर कर देते हैं, सब कुछ करने पर उनके चरित्रके ऊपर ध्यान नहीं देते। उसका फल यह होता है कि वच्चे अकाल ही कालकलित हो जाते और अगर जीनेकी तकलीफ करते भी हैं तो रोगोंस जकड़े हुए रह कर। इसीलिये तपस्याकी आवश्यकता होती है।

तपस्या उसे ही नहीं कहते कि जाड़ेके दिनोंमें ठंढे पानीमें रात भर पड़े रहना या गर्मोंके दिनोंमें पंचाग्नि ताप कर लोगोंको दिखाना कि मैं वडा तपस्वी हू बल्कि संयम नियम इत्यादि करता हुआ इन्द्रियोंको वशमे रखे और मनको शुद्ध रखे। इसके लिये जितना कष्ट हो सहनेको तैयार हो।

फिर हठ योगसे इन्द्रिय और प्राण वायुको वशमे कर ब्रह्मका ध्यान करता हुआ गायत्रीकी उपासना करे। गायत्रीके चौवीश अक्षर हैं। २४ प्राणायाम भी उत्तम माना गया है। ऐसे तो ४८ भी प्राणायाम माना जाता है। पर यह प्राणायाम गृहस्थोसे होना कठिन है। खयाल रहे कि प्राणायाम करते समय प्राण वायुका हिलना या रेचक स्वासको जल्दी छोड़ना ठीक नहीं है। इससे अनेक रोग होनेका डर रहता है। इसलिये जितनी शक्ति हो उतनी ही संख्यासे आस्ते आस्ते बढ़ा कर पूरा कर लेना चाहिये।

सन्ध्या ।

सन्ध्याका अर्थ है दिन रातकी सन्धिमें ब्रह्मकी उपासना करना। इससे मनःशुद्धि और शरीर शुद्धि होती है। शरीर, मन और बुद्धिकी शुद्धि होनेहीसे सब कुछ की उन्नति हो सकती है। यह भारतके मनुष्योंकी सम्पत्ति थी। इसीके सहारे भारतीय सदा विजयी हुआ करते थे। अब तो बीड़ी सिगरेटसे ही ब्रह्म ध्यान वा अग्निहोत्र हुआ करते हैं। छोटे छोटे बच्चोको विषय वासना की घोटी दी जाती है। दो वर्षके लड़के तकको बीड़ी, शराब, और ताड़ी पिलानेकी चाट लगाई जाती है।

जब उपनयन संस्कार होता है तो उस समय भी एक नाटक ब्रह्मचारीसे कराया जाता है। जब लड़का पटिया कांख तले दबा, दण्ड ले खड़ाऊंपर चढ़कर चलता है तो पिताजी घर पर ही पढ़ा देने और शादी करा देनेको कहकर उस बच्चेका समावर्तन करा देते हैं। जो सोलह वर्षोंपर समावर्तन होता था वह १६ मिनटसे भी कम समयमे समाप्त हो जाता है। तो कैसे संध्याविधि वह लड़का जान सकता है।

इसके अतिरिक्त एक बात सन्ध्यामें यह भी थी कि एक ही समयमे सम्पूर्ण भारतके लोग एक मन हो ईश्वरकी शरणमें जाते थे। इसीलिये सर्वव्यापक ईश्वरको भी उनके भावोंके ऊपर ध्यान देना पड़ता था। अब तो लाखोंमें एक आदमी भी नियमिरूप-

से संध्या करता है नही तो सच पूछिये तो यह लोपसा हो गया है।

जिस जातिमें अभीतक किसी भांति यह भाव जीवित है वह हजार अवगुण रहते भी जीवित है। सम्पूर्ण भारतके मुसलमान एक समय उठते बैठते और ईश्वरकी शरणमे जाते हैं। सम्पूर्ण देशके ईसाई एक समय घुठने टेक कर ईश्वरकी प्रार्थना करते हैं। राष्ट्रीयभावसे देखिये, या पारलौकिकभावसे देखिये जिस नजरसे देखिये हम हिन्दुओंमे प्रत्येकका यह कर्तव्य हैं कि वह भोर और सन्ध्यामें सहस्रों झंझटोको छोड़कर संध्या करने बैठ जाय।

महात्मा गांधीने भी प्रार्थनास्वरूपसे प्रातः और संध्यासमय सब मण्डलोको इकट्ठो कर ईश्वरसे प्रार्थना कराते है। बहुतलोग आज कह बैठते हैं कि इस मजहबी झगड़ेमे कौन पड़े। हम उतनी देर देशका काम करेंगे जितनी देर शिर खपावेंगे। उनसे मेरा नम्र निवेदन है कि बिना दैवीशक्ति या मानसिक शक्ति के मनुष्य कोई भी मनुष्य उत्तमता पूर्वक काम नही कर सकता है। अपनी दीवार खोदना भी काम कहला सकता हैं और और दीवार द्रढ़ बनानेकी क्रिया भी कार्य्य कहा सकता है। पर दोनोंमे बड़ा अन्तर है। इस लिये अपने मनको शुद्ध या तरो-ताजाकरनेका साधन सन्ध्या या योग साधनसे भिन्न और कोई भी साधन ऋषियोने उत्तम नहीं समझा। इसके प्रमाणमें हम और कुछ नहीं पेश कर सकते है। यह तो क्रिया शास्त्र है। इसके करनेसे

ही इसका महत्व मालूम हो जायगा। इसकी परीक्षा करनेके लिये एक सप्ताह भी कमसे कम सविधि सन्ध्या करना चाहिये।

सन्ध्या पूर्वविचारः—

स्नात्वा मन्त्रैद्विराचम्य।
परिदध्याच्च वाससी॥
प्रक्षाल्य चरणौ हस्तौ।
द्विराचम्यच कुशासने॥
अन्तार्जानुः सोत्तरीयः।
स शिखश्चोपवीतवान्॥
एवं संध्या मुपासीत।
दन्त धावन पूर्विकाम् (याज्ञ)॥

सन्ध्योपासनके नियम।

(१) स्नान करके मन्त्रपूर्वक दोबार आचमन करके याज्ञ-वस्त्रोंको (उत्तरीय अधोवस्त्र) धारण करे हाथ और पैर धोकर दो बार आचमन करके कुशासनपर बैठे। दाहिने हाथको घुटनेके भीतर करके उत्तरीय वस्त्र पहना हुआ शिखा और सोपवीत हो गया हो ऐसा मौनी होकर (चुपचाप) विधिके अनुसार सन्ध्याका उपासन करे। पहले दन्त धावन करके तब प्रातः सन्ध्याका उपासन करे।

सन्ध्याभिप्रायः ।

सन्ध्याः—

सन्धीयते परब्रह्म सा सन्ध्या सद्भिरुच्यते ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ यदज्ञान कृतं भवेत् ॥
त्रिकाल सन्ध्या करणात्त त्तत्सर्वं विनश्यति ॥

सन्ध्या देवताऽऽध्यात्मिका शक्तिर्ननत्वाधि भौतिका ॥ तस्याः केन्द्रः सूर्य्य इति कथ्यते ॥ प्राचीन महर्षयः साकार सूर्य्य न पूजितवन्तः किन्तु सूर्य्यमण्डलान्तर्गत निराकारम् सूर्य स्वरूपिण मीश्वरं पूजितवन्तः इति ज्ञायते (सयश्चायं पुरुषो यश्चाय मादित्ये स एकः) तैत्तरीय० उप०—

सन्ध्याप्रातःकालकी योगक्रिया भी तीनों समय करनेकी विधि है

उत्तमा तारको पेता मध्यमा लुप्ततारका ।
अधमा भास्करोपेता प्रातः सन्ध्या त्रिधामताः ॥१॥

सायं सन्ध्याः—

उत्तमा भास्करो पेता मध्यमा लुप्त भास्करा।
अधमातारको पेता सायंसन्ध्या त्रिधामताः ॥२॥
अध्यधमादाय सायं सन्ध्या माध्यान्हिकीष्यते॥३॥

प्रात: सन्ध्या तीन प्रकारकी होती है:—

उत्तम वह है जब आकाशमें तारे हो। मध्यम वह है जब तारे अस्त हो जावें। अधम वह है जब सूर्य निकल आवे।

सायं सन्ध्या तीन प्रकारकी होती है:—

उत्तम वह है जब सूर्य अस्त न हुआ हो। मध्यम वह है जब सूर्य अस्त हो गया हो। अधम वह है जब तारे निकल आवें। मध्याह्न सन्ध्याका समय डेढपहर दिन चढ़नेके उपरान्त सायंकालतक है।

सायं सन्ध्याको तारोंके उदय होने तक तथा प्रातः सन्ध्याको सूर्यके उदय होने तक करता रहे। (याज्ञ)

यद्यपि ईश्वरके सामने सब मनुष्य एक समान हैं क्योंकि उस ईश्वरसे ही सब उत्पन्न हुए हैं तथापि भिन्न भिन्न देश-काल पात्र और शक्तिके अनुसार उसने अधिकारीका भेद करके धर्म विशेषकी आज्ञा दी है। जो जिस धर्मका अधिकारी है वह उस धर्मके सेवन करनेसे ही परमपदको प्राप्त होता है।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः पर धर्म्मो भयावहः।
चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः॥
(गीता)

इन प्रमाणोंसे सूचित होता है कि दूसरेके धर्मका सेवन करनेसे कुछ भी फल नहीं होता बल्कि अनर्थ परम्परा हो जाती है। जैसे धान्य विशेष क्षेत्र विशेषमें ही उत्पन्न हो सकते हैं।

जिस भूमिमें जाड़ोमे अनाज बोया जाता है उसमें ईख उत्पन्न नहीं होती। एवं ईखके खेतोंमे जाड़ोंका अनाज नहीं उपजता। इस उलटा बोनेसे खेतकी उपजाऊशक्ति नष्ट हो जाती है। ऐसे ही परमेश्वरने भी जिस प्रकारके मनुष्य रूपी क्षेत्रमे जिस प्रकारके धर्म रूपी बीजके फलके योग्य समझ उसी प्रकारसे बीज रूप कर्मोंके भेदोंका वपन किया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि अधिकारीके भेदसे धर्मका भी भेद होता है। इस कारण यदि कोई मनुष्य दूसरेके धर्मका सेवन करता है तो वह ईश्वरकी आज्ञाका उल्लंघन करता है। ईश्वरकी आज्ञाको उल्लंघन करनेसे उसका अपमान होता है।

उस अपमानका दंड भी पुनः भोगेगा। वाराह पुराणमे लिखा है कि–श्रुति-स्मृति मेरी ही आज्ञा है, जो मनुष्य उसका उल्लंघन करता है वह मेरी आज्ञाका पालन न करनेसे मेरा द्वेषी समझा जाता है। अतः उसको दुःख भोगना पडता है। उसको नरकमें जाना पड़ता है। गीतामें कहा है कि अपने धर्ममे मरना श्रेष्ठ है। पर दूसरे धर्मका सेवन करना भयसे भरा हुआ है। ब्राह्मण आदि चार वर्णोंको गुण तथा कर्मोंके अनुसार मैंने ही उत्पन्न किया है।

सन्ध्या फलम् ।

सन्ध्याके उपासनसे क्या फल है ?

या वन्तोऽस्यां पृथिव्यांहि विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः।
तेषांवै पावनार्थाय सन्ध्या सृष्टा स्वयंभुवा ॥२॥

(याज्ञ)

सर्वा वस्थोऽपियो विप्रः सन्ध्योपासन तत्परः।
ब्राह्मण्याच्च महीयेत स्वाध्यायाच्च न हीयते ॥३॥

(धर्मसिंधु)

सन्ध्यामुपासते ये ते निष्पापा ब्रह्मलोकगाः।
एवं जपपरः सन्ध्यां भक्त्यो पासीत योद्विजः ॥४॥
नियमेन सदा गच्छेदृषित्वं नात्र शंसयः।
तस्याज्जितेन्द्रियो नित्यं सन्ध्योयांस्मि समाचरेत्
स सर्व लोकान् जित्वाथविप्रः स्ववशमानयेत्।
तदत्र ब्रह्मभावेन यावदाभूतसंभवम्।
तावन्नित्यों निरातङ्को भवेदत्र न शंसयः ॥

(भरद्वाजः)

इस पृथ्वीमे जितने कर्महीन द्विज हैं। उनको पवित्र करनेके ब्रह्माने सन्ध्या उत्पन्न की। (याज्ञ)

जो ब्राह्मण सन्ध्या करनेसे तत्पर हो वह किसी अवस्थामें भी ब्राह्मणत्व तथा (स्वाध्याय) वेदपाठसे हीन नहीं हो सकता।

(कात्या०)

जो सन्ध्याका उपासन करते है वे निष्पाप होकर ब्रह्मलोकमें प्राप्त होते हैं।

ध० सि० या०।

जो द्विज नियम तथा भक्तिपूर्वक जपमें तत्पर होकर सन्ध्याका उपासन करता है वह ऋषिभावको प्राप्त हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं। अतएव द्विजोंको उचित है कि जितेन्द्रिय होकर नित्य सन्ध्याका उपासन करें। द्विज इस प्रकार नित्य सन्ध्योपासन करता है वह सब लोकोंको जीतकर अपने आधीन कर लेता है और अन्तमें ब्रह्मभावको प्राप्त होकर कल्पान्त पर्यन्त नित्य निर्भय रहता है।

इसलिये उत्तम सन्ध्योपासनको नित्य करना चाहिये।

इसके न करनेपर और कर्मोंका अधिकार नहीं होता। सन्ध्यासे हीन मनुष्य अपवित्र है तथा किसी उत्तम कर्म करनेके योग्य नहीं हैं।

वह चाहे किसी अन्य कर्मको करे किन्तु उसे उसका फल नहीं प्राप्त हो सकता है।

अतएव उपनयनके दिनसे लेकर सन्ध्या मनुष्योंको जीवन पर्यन्त करनी चाहिये।

यद्यपि वेद-पाठमें तथा उनका अध्ययन करनेमें (अनध्याय) अध्ययनका कई समय निषेध हैं। परन्तु यह सन्ध्या तो नित्य कर्म है क्योंकि शास्त्रोंमे लिखा है—नित्य कर्ममे कोई अनध्याय नहीं होता है।

यथा—

स्नानं संध्यां त्यजन्विप्रः सप्ताहाच्छूद्रतां व्रजेत्।
तस्मात् स्नानंच संध्यांच सूतकेऽपि न संत्यजेत्॥

(कात्या०)

संध्योपासन नित्य करना उचित है—निम्नलिखित मन्वादि प्रमाणोंसे स्पष्ट प्रतीत होता है—

अहरहः सन्ध्यमुपासीत (तैत्तिरीय० ब्राह्म०)

शक्ति मानुदिते काले स्नानं सन्ध्यांन हापयेत्।

(व्यासः)

कामान्मोहाच्च लोभाच्च सन्ध्यां नातिक्रमेत् द्विजः। सन्ध्या तिक्रमणाद्विप्रः ब्राह्मण्याच्च्यवते यतः। मनु—

उपाकर्ममें, नित्यके जपमे तथा होमके मंत्रोंमें अनुरोध आनेपर भी अनध्याय नहीं होता है। (कात्या०)

जो मनुष्य (उन्मत्त) मूर्छितप्राय हो गया हो या जो सदा ... रहे उसके बदले उसका पिता या माता सन्ध्या करदे।

देवाग्नि द्विज विद्यानां कार्येमहति संस्थिते
सन्ध्या हानौ न दोषोऽस्ति यतस्तत्पुण्यसाधनम्
अशक्तौ निर्जले देशे मृतौ जातौच सूतके।
जपेच्च मानसीं सन्ध्यां कुशवारि विवर्जिताम्।

अर्थ—देव सम्बन्धी, अग्नि सम्बन्धी, ब्राह्मण संवन्धी अथवा विद्या संवन्धी कोई भारी कार्य आ पड़े तो सन्ध्याके छूट जानेमे कोई दोष नहीं है। क्योंकि ये कार्य पुण्यके निमित्त होते हैं।

जव मनुष्य असमर्थ हो या ऐसे देशमें हो जहां जल न मिले अथवा जन्म (सूतक) मरणके आशौचसे अशुद्ध हो गया हो तो उसको उचित है कि मानसिक सन्ध्या करे। कुश और जलको काममें न लावे।

विधिहीनं भवेद्‌ दुष्टं कृत मश्रद्धयापि वा
तद्धर न्त्यसुरास्तस्य मूढत्वा दुकृतात्मनः ॥१॥
श्रद्धा विधि समायुक्तं कर्मयत् क्रियते नरैः।
शुचिभिश्चैक चित्तैश्च तदनन्ताय कल्पते ॥२॥

सन्ध्या करनेमें विधिकी वड़ी आवश्यकता है क्योंकि जो भी कार्य विधिसे विना किया जाता है वह निष्फल होता है।

सन्ध्यायां शुद्धमन्त्रोच्चारणमावश्यकम्।

उदात्तमनुदात्तं च विसर्गान्तं तथैवच
द्रुतञ्च स्वरितोदात्तं स्वरं विन्यात्तथा प्लुतम्।

परन्तु सन्ध्या करनेमें मन्त्रोंके शुद्ध उच्चारणकी बड़ी आवश्यकता है।

उदात्तादि स्वरोका तथा व्यञ्जनादिकोका अवश्य ध्यान होना चाहिये।

सन्ध्या तथा जप आदिमे स्वर आदि जानकर सम्पूर्ण मंत्रोंका उच्चारण करना चाहिये।

वृत्रासुरने स्वर आदि न जानकर हीन मंत्रोंका उच्चारण किया था अतः इन्द्रने उसे वज्र द्वारा मार डाला था। अतः अब सन्ध्या विषयक कोई सन्देह नहीं रहा।

प्रमाणों द्वारा सिद्ध हो गया कि सन्ध्योपासन परमावश्यक है।

॥ इति शम् ॥

✲ तीसरा सोपान ✲

सेवाधर्म्म ।

धर्म्मः सेव्यः सेवितव्यश्चधर्म्मः

सेवक करपद नैनसो मुखसो साहिब होय ।
तुलसी प्रीतिकी रीति सुनि सुकवि सराहिय सोय ॥

यों तो हमारे हिन्दू धर्म्मके अनुसार सभी उत्तम कार्य्य धर्म्म ही कहाते हैं पर सबकी समझमे सहजसे आ जाय इसलिये धर्म्मनीति समाजनीति और राजनीति तीन विभाग विद्वानोंने किये हैं । सेवाधर्म्म इन तीनोंसे सम्बन्ध रखता है ।

धर्म्म सेवा, समाज सेवा, देश सेवा, दीन सेवा और साहित्य सेवा, सेवाकी श्रेणियोंमे ये ५ मुख्य हैं और सब गौण हैं । आज-कल नौकरीको भी सेवाही कहते है पर मेरा यहां मतलब ऊपर लिखे ५ श्रेणियोंसे है । स्वार्थ भावसे सेवा करना नीच कर्म्म और हेय है । इसीके लिये आचार्य्योंने लिखा है :—

सेवाधर्म्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ।

अर्थात् सेवा कार्य्य इतना कठोर है कि योगिजन भी इससे चकराते हैं । हमारा तो विश्वास है कि सेवा कार्य्य सच्ची-मुक्ति है, देशको जगानेकी युक्ति है सभी धर्म्म-शास्त्रोंकी शूक्ति है,

हमारे नवजवानोंके लिये संजीवनी-शक्ति है और यही सच्ची देश भक्ति है।

जब सुनता हूं कि महर्षि दधीचिने हंसते हुए अपनी हड्डी दे डाली, श्रीहनुमानजी हथेलीपर जान रखकर अकेले भयानक लंकामे कूद पड़े और शंकराचार्य्य, स्वामी दयानन्द, स्वामी रामानन्द, कबीरदास तथा शिवाजी एवं श्रीगुरुगोविन्द सिंह इत्यादि धर्म्मवीर और आत्मवीरोंने माताकी बलिवेदीपर अपना बलिदान कर दिया। जब पुराणोंमे अपने आराध्यदेव भगवान रामचन्द्र और श्रीकृष्णचन्द्रने लोक-सेवा समाज-सेवा तथा धर्म्म सेवामे अपने गौरव सुख और सम्पत्तिकी तिलाञ्जलि दे दी तो हृदय उछल पड़ता है और हठात् मुखसे निकल पड़ता है कि शाबास भारत! तेरी गोदमे जबतक ये वीर खेलते थे तबतक तू जीता था, चमकता था, दमकता और संसार पर तेरी धाक थी। पर जबसे सेवा धर्म्मकी कमी हुई, ह्रास हुआ तबसे ही पराधीन हुआ दीन हुआ और सभी सम्पत्तियोंसे विहीन हुआ। आज जितने भी संसारमे देश है सभी सेवा धर्म्मके ही कारण जीते जागते है, जानदार और शानदार है।

स्वामी श्रद्धानन्द बीमारीसे मरते तो संसारमे इतनी प्रख्याति नही पाते। बच्चा मदनमोहन जलिआनवाले बागके हत्याकांडके समय अङ्गदके पैर खड़े होकर कालसी गरजती हुई नव नव गोलियोंका सामना न करता तो देशके हृदय तन्त्रीको नहीं हिला

सकता। यमदण्डकी चोटोंके हंसते हुए अपनी छातीपर अपने कलेजेपर वृद्धवीर लाला लाजपतराय न सामना करते तो हमारे नसोंमें खलबली और धमनियोंमें गर्मी न पहुंचा सकते। ये देशके स्वयं सेवकोंके प्रत्यक्ष दृश्य हैं।

फ्रांसकी सच्ची वीरबाला जोनआफयार्क, अमेरिकाके वासिङ्-टन्, इटालीके टालष्टाय इत्यादि वीरोंने अपने सेवा कार्य्यसेही संसारमें अपनी कीर्ति-वैजयन्ती फहरायी थी। पर दुःख है कि शुद्ध हृदयसे देश या समाज सेवामें अपनेको सौंपते हुए अब नजर नहीं आते।

सेवा किसे कहते हैं।

ऊपरका गुसाईं तुलसीदासजीका एक दोहा ही निःस्वार्थ सेवाका ज्वलन्त उदाहरण हो सकता है। गुसाइंजी अपने उदा-हरणमें मनुष्य शरीरकी सभी इन्द्रियोंको सेवक मानते हैं। हाथ पेर आंख इत्यादि इन्द्रियां मुंहके लिये ही सब कुछ करती हैं। और मुंह भी अपने ही गोल घरमें रखकर न पाकस्थलीमें अन्नको पहुंचा देता और पाकस्थली रसको चारो ओर पहुंचा देती है। कहनेका मतलब यह है कि सेवकको निःस्वार्थ भावसे सेवा करना चाहिये और स्वामीको सेवकोंके लिये ही सब कुछ करना चाहिये। इसीको सेव्य सेवक भाव कहते हैं। ऐसे तो सेवक और स्वामी अनन्त पड़े हैं।

हमारे देशमे स्वयंसेवकोकी मंडलीकी भरमार है। लोग स्वयं सेवकोका बाना भी पहनते हैं। लकधकसे चमकते भी है। मारे ऐंठके दोहरे हुए जाते भी हैं। पर उसे हम सेवकोका बाना मात्र कह सकते हैं। सेवक थे हनुमानजी। वाहन होनेकी आवश्यकता हुई वाहन भी बने और मंत्री होनेकी आवश्यकता हुई तो मन्त्रित्व कार्य्य भी बड़ी खूबीसे निबाहा। हमारे देशके साधुओकी मण्डली स्वयं सेवक मण्डली थी। वह देश सेवा समाज सेवा और धर्म्म सेवा करनेके लिये ही गांव गात्रमे अलख जगाती रही। अब उसका रूप बदल गया। रक्षकका रूप भक्षक हो गया। सेवा छूट गयी आडम्बर बढ गया। सबसे पवित्रकाम अपवित्र समझा जाने लगा।

मेरी समझसे सभी पुण्यकार्य्यसे सेवा कार्य्यको वजन बढ़ी चढ़ी है। गङ्गास्नानसे गङ्गामे डूबते हुएको निकालना अधिक पुण्य है। अग्निकुण्डमे हवन देनेसे जलते हुएको बचाना अधिक धर्म्म कार्य्य है। शिवजी या ठाकुरजीकी पूजा करनेसे दीवारसे दबते हुएको बचाना अधिक शुभकार्य्य है। मान लीजिये किसी फूलवारीमे दो माली है। दोनोमे एक दिन रात फुलवारीको आबाद करने कोड़ने जोतनेमें लगा रहता है। उसे छुट्टी नहीं मिलती कि मालिकके आनेपर स्तुति प्रार्थना भी करने आवे। पर एक माली है जो फुलवारीकी कोई परवाह नहीं करता है। उसके हिस्सेके फूल सूख रहे हैं। पेड़ मुरझाते जाते हैं। पर मालिकके

आनेपर लम्बी सलामे हौंकता है। उसकी आरजू मिन्नतें करता है। तो मालिकको वेतन वृद्धि किसकी करनी चाहिये? मेरी समझसे सच्चा और बुद्धिमान मालिक उसी मालीको तरक्की देगा जो फुलवारीकी सिंचाई आदिमें लगा है। और फुलवारीको बरबाद करके सलाम हौंकनेवालेको फटकारेगा और अपने सामने-से हटा देगा। बस लोक सेवा और पूजा अर्चामे यही भेद है। इस संसार-फुलवारीके हम मनुष्य-माली हैं। लोक सेवाको तुच्छ समझकर यदि हम केवल ईश्वर सेवाको ही सब कुछ मानेंगे तो हमारी सेवासे ईश्वर भी अप्रसन्न होगा। हमें धूर्त और ढोंगी समझेगा।

मनुष्य और पशुमें केवल आकारका ही भेद नहीं है बल्कि भावमें ही भेद होनेसे मनुष्य पशुसे उत्तम और प्राणिमात्रसे श्रेष्ठ कहा जा सकता । यों तो।

"काकाऽपि । न्नकुरुते चंच्वा स्वोदर पूरणम्।"

अर्थात् अपना पेट तो कौआ, सूअर इत्यादि भी भर लेते हैं। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि केवल अपना पेट भरने मात्र सेही मनुष्यमें मनुष्यत्व नहीं आता है।

"उदर भरण मात्र केवलेच्छोः पुरुपपशोश्च
पशोश्चको विशेषः।"

अर्थात् केवल पेट पालनेवाले उस पशु-पुरुपमे और पशुमें

क्या विशेषता है? सचमुच अपना केवल पेट भरना संसारमें पशु होनेके बराबर है।

भारतीय लोगोमे सब गुण है। विद्या-बुद्धिकी भी कमी नही है। जिस कार्य्यमे लगा दो सबसे आगे ये बाजी मार ले जाते हैं। धर्म्म-ज्ञानमे भी इनके समान ज्ञानी दुनियामे कम मिलेगे। हां, यदि किसी बातकी कमी है तो धर्म्म प्राण सेवा कार्य्यकी। यही कारण है कि सभी गुण रहते भी ये नीच काले या निकम्मे कहे जाते है। जैसे कोई पुरुष बहुत सुन्दर हो हृष्ट पुष्ट हो, धनीमानी भी हो पर उसके प्राण न रहनेके कारण उसकी आंखो चील कौए नोचते है, उसके प्रचण्ड भुजदण्ड कुत्ते नोंचकर खा जाते हैं और सभी कुरूपता होते अस्थि पंजरावशेष रहते भी उसमे प्राण रहते हुए कोई जीव जन्तु उसके पास नही फटकता है। उसी भांति भारतीय वीरोमे धर्म्म प्राण-सेवा बुद्धि न रहनेसे पराधीन निकम्मे और हतबुद्धि हो रहे है और विदेशी लोगोमे सभी दुर्गुण रहते भी सेवाधर्म्म रहनेसे उनको पांचो अंगुलियां घीमे है। वे फूलते फलते हैं। एक छोटेसे व्यक्तिपर कोई आफत आ जाती है तो समूचा देश हिल जाता है। दहल उठता है और ठीक इसके विरुद्ध भारतीयोका पडोसी भाई दुःखसे कातर हो कराहता है, तृष्णाभरी आंखोसे अपने भाईकी ओर देखता है पर भाई साहबके ललाटमे पसीना तक नही आता वे कान भी नही हिलाते।

भारत तबतक जीता जागता था जबतक इसमे सेवा धर्म्मकी

लगन थी। जबतक इसमे सेवा करनेकी चाठसी थी। जब ऋषि विश्वामित्र अपनी हिम्मत हार चुके कोई सहारा न मिला। अन्तमे उनके मनमे एक बात आई। चट अयोध्याके लिये प्रस्थान कर दिया। दशरथजीसे फरियाद की। उनके दो लड़कोको मांग लाये। दोनोंने चौतनी (एक प्रकारकी जंघिया जिसे पहन कर कुस्ती बाज अखाड़ेमे उतरते हैं) कस ली। तीर धनुष संभाल लिये और दोनों राजकुमार पैदल ही विश्वामित्रके साथ चल पड़े। आज उन राक्षसोंसे सामना करने जाना है जिनकी धाक संसार पर जमी हुई थी। उनके विरुद्ध खड़ा होनेकी हिम्मत किसी देव, गन्धर्व, किन्नरोंमे नही थी। दोनों स्वयं सेवक निर्भीकताके साथ मुनिके संग चले जाते हैं। बीचमे बकसरके पास जीवजन्तुओंको बरबाद करनेवाली ताड़का मिली। दोनोंही तन गये। दोनोंहीसे ठन गई। बातकी बातमे रास्ता साफ कर दिया। ताड़काको मार डाला। यही मानो राक्षसोंकी आंखोंके कांटा होनेका कारण हुआ। इतनेपर भी वे रुके नहीं। आगे बढ़तेही गये। विश्वामित्रने यज्ञारम्भ किया। सात दिनोंतक बराबर यज्ञ जारी रहा। सात दिनोतक दोनों भाई दिन रात सजग होकर पहरा देते रहे। खाने की चिन्ता भी छोड दी। अन्तमे आफतका पहाड़ टूट ही पड़ा। राशिके राशि राक्षस मंडली आने लगी। सबका सामना किया। सबको मार डाला। रास्ता निष्कंटक हो गया। इसे कहते है सेवा धर्म्म। इसे कहते स्वयं सेवकका कार्य।

सेवा धर्म्ममें अपनी ममताका बलिदान करना पड़ता है। अपने कर्तव्यको सामने रखते हुए शारीरिक सुखको तिलांजलि दे देना पड़ता है। कर्तव्यको सामने और अपनी स्थितिको पीछे रखना पड़ता है। युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ शुरू किया। सभी राजा लोग आ गये हैं। श्रीकृष्ण भगवान भी आ गये हैं। सबोंको काम बांट दिये गये। अब श्रीकृष्ण भगवानकी बारी है। उनसे पूछा गया "आप कौन काम अपने हाथमे लेंगे? उन्होंने अपने लिये यज्ञमे जितने लोग आवेंगे उनका पैर धोनेका काम लिया। सूर-दासजी कहते हैं कि श्रीकृष्णजीने जूठ उठाई थी।

"राजसु यज्ञ युधिष्ठिर कोने तामें जूठ उठाई।
प्रेमके वश अर्जुन रथ हांक्यों भूलि गये ठकुराई।"

जिन्होंने जरासिन्धकी जेलसे २१ हजार राजाओंको छुड़ाया था, जिन्होंने प्रबल सम्राट् कंसको मार कर उग्रसेनको राज्य दिया था उन्होंने सबोंके पैर धोये जूठ उठायी। इसका प्रभाव इतना पड़ा कि भारतके सभी राजाओंने बहुमतसे श्रीकृष्णको ही पूज्यमान शिरमौर माना। प्रबल सम्राट् अशोककी कन्या और पुत्र दोनोंने सेवा धर्म्म लिये आजीवन अविवाहित रहना स्वीकार किया। बुद्धदेवने भी एक बार कहा था कि लोक सेवा करतेही मेरा जीवनका अन्त होता तो मैं अपनेको धन्य मानता।

चाणक्यके "कौटिल्यनीतिशास्त्र" मे तो जो लोक सेवा न

करें उन्हें दण्ड देनेका भी विधान लिखा है। आजसे ३०, ४० वर्ष पहले इसी प्रथाके अनुसार जब कभी देहाती गांवोंमें कुआं या तलाव खोदा जाता था तो सभी ग्रामवासियोका कर्तव्य होता था कि पांच पांच टोकरी मांटी जमीनसे खोदकर अपने शिरपर ले बाहर फेंकते थे। किसीके घर उत्सव होता था तो उसके सभी पड़ोसके सम्बन्धी बिना बुलाये उसका सब काम सम्भालते थे।

जबतक भारतमें कुछ भी जान थी जीवन था तबतक सेवा धर्म्म भी जीवित था। अब सेवा धर्म्मके साथ साथ जीवन भी जाता रहा। अब जब कभी जीवन आवेगा तो सेवा धर्म्मके साथ साथ ही आवेगा।

स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागरकी प्रतिष्ठा केवल बङ्गालमे ही नहीं बल्कि भारतके अन्य प्रान्तोमे भी इसीलिये थी कि उन्होंने सेवा धर्म्मको समझा और किया था। वह संस्कृत कालेजके प्रिन्स-पल थे। आप कालेज जा रहे हैं। सड़कपर हैजेसे बेचैन मेहतर पड़ा है। विष्ठा और मूतसे तर है। लोग उससे बचकर चलते हैं। ईश्वरचन्द्र विद्यासागरको नजर पड़ी। आपने अपनी साफ सुथरी चादरसे उसकी देहको विष्टा पोछी। अपने पीठपर उसे चढ़ाया। अपने घर लाये। हसोंतक उसकी औषधि हिफाजत की। जब बिल्कुल भला चङ्गा हो गया तो उससे आपने कहा कि भाई, अब तू अपने घर जा। नहीं तो घरमे मेहतर रखनेसे बेरादरीके लोग मुझे जातिच्युत कर देंगे। मेहतरने जब पूछा कि "अबतक क्या

मैं मेहतर नही था ?" तो जबाव मिला कि विपत्तिमे पड़ा हुआ मनुष्य सबका भाई होता हैं। अबतक तुम हमारे भाई थे। मेहतर रो उठा।

भारत-हृदय-मन्दिरके ठाकुर महात्मा गान्धीका महत्व केवल सेवा धर्म्मसे ही है। फौजीमे विष्ठातक ढोयी। कितनेकी मुटरी ढोयी। वर्तन मांजा।

बरसती हुई आगमे कूदकर उमड़ी हुई नदीमे जानपर खेल कर और खड्गहस्त मनुष्यके सामने डटकर स्वयंसेवक जो उपकार कर सकते है वह राजे महाराजे, धनीमानीसे नही हो सकता है। देश, समाज या धर्म्मके जीवन प्राण सेवक हैं। इतिहास साक्षी है। संसारके सभी देशोको स्वयंसेवकोने जगाया है। गिरते हुएको बचाया है।

चौथा सोपान

दान धर्म्म

दा धातुमे अनट् प्रत्ययके योगसे दान शब्द बना है। साधारणतया इसका अर्थ देना होता है। अंग्रेजी भाषामे 'दान' का पर्य्याय Charity है। इसका मौलिक अर्थ प्रेम Love है; किन्तु यहांपर हम दानका सीधा, सरल तथा सर्व्व-व्यापक अर्थ लेकर ही इसपर अपना यथोचित विचार प्रकट करेंगे। अस्तु।

हिन्दू-धर्म्ममे दान का महात्म्य आदि कालहीसे चला आ रहा है। जिस समय सभ्यताकी डींग हांकनेवाली वर्त्तमान कालीन गोरी जातियां अविद्या एवं असभ्यताकी कालीरातमे सोई हुई थी, जिस समय उन्हे क, त, प तकका ज्ञान नही था अथवा खुले शब्दोमे यों कहना चाहिये कि जिस समय वे पर्व्वतोंकी गुफाओं तथा जङ्गलोंमे निवास करती हुई वनचारी पशुओके मांस तथा वनोत्पन्न कन्दमूलोंपर ही अपना जीवन व्यतीत करती थी, उसी समय उस आदि युगमे ही पञ्चनद त्रिधौत पञ्जाबसे लेकर कन्या कुमारीतक दान की महिमाका पूर्णरूपेण प्रचार हो चुका था। श्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। जैसे श्रुतिवाक्य चारों ओर गुञ्जायमान होकर भारत वसुन्धराके वातावरणको पुण्य परिपूर्ण कर रहे थे। हमारे कहनेका तात्पर्य्य यह है कि हमारे इस भारतवर्षहीमें पहले-पहल दान की महत्ता स्वीकृत हुई थी। दान जैसे सद्व्यापारका श्रीगणेश प्रथमतः इसी देशवालोंने किया था।

भारतके प्राचीन धार्मिक इतिहासोंपर दृष्टिपात करनेसे पता चलता है कि इस हिन्दुस्तानमें दानकी कितनी प्रतिष्ठा हुई थी।

यहींपर कर्ण जैसे प्रतापी एवं विश्व-विजयी भूपति हो गये हैं जिन्होंने अपने दानके द्वारा परम पिताको भी मुट्ठीमे कर लिया था। ऐसे महान दानीकी कथा आज भी भारतके घर घरमें बड़ीं श्रद्धाके साथ कही और सुनी जाती है। यहीं—

इस दधीचि सदृश धीर दानी, जिन्होने दूसरोंकी भलाईके लिये अपने आपको कुर्ब्बान कर दिया था। वली और हरिश्चन्द्र, शिवि और रन्तिदेवकी पुण्यमयो गाथाओंको कौन नही जानता? अनेक शताब्दियोके व्यतीत हो जानेके पश्चात् आज भी उपर्य्युक्त महात्माओकी भक्तिमें विभोर होकर कवि उनकी उदात्त अथच उज्ज्वल करनी की ओर इशारा करनेसे मुँह नही मोड़ता है। वह कहता है :—

क्षुधार्त रन्तिदेवने दिया करस्थ थाल भी।
तथा दधीचिने दिया परार्थ अस्थि जाल भी।
उशीनर-क्षितीशने स्वमांस दान भी दिया।
सहर्षवीर कर्णने शरीर मान भी दिया॥
अनित्य देहके लिये अनादि जीव क्यों डरे?
वही मनुष्य है कि जो मनुष्यके लिये मरे!!

सारांश यह कि आदि कालसे ही भारतकी नस नसमे दान-शीलताका भाव भरा पड़ा है और आज—अपने अधःपतनके इस कुटिल समयमे भी इस विषयमें यह किसीसे पीछे नही हैं। अस्तु।

आगे बढ़नेके पहले अब सर्व प्रथम विचारणीय यह है कि दान कितने प्रकारके हो सकते हैं। निखिलदर्शन

की सारभूता गीतामें श्रीकृष्ण भगवानने दान तीन प्रकारके बतलाये हैं—सात्विक, राजस और तामस। अब विवेचनीय यह है कि सात्विक दान किसे कहते हैं। इसका यथार्थ रूप क्या है? इस प्रकारके दानसे मानव-समाजका कहांतक और कितना कल्याण साधन हो सकता है।

सात्विक-दानकी परिभाषा देते हुए हमारे महर्षिगण कहते हैं:—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेनुपऽकारिणे।
देशे काले च पात्रेच तद्दानं सात्विकं स्मृतम्॥

अर्थात्—"दान देना हमारा कर्त्तव्य है" केवल इसी भावनासे प्रेरित होकर जो दान दिया जाता है, जिसमें प्रत्युपकारकी आशा की झलकतक नहीं रहती, तथा जो देश काल पात्रका पूर्ण विचार कर दान दिया जाता है, वही सात्विक दान है। इस प्रकारका दान त्यागका सुन्दर और स्पष्ट रूप है। इसी प्रकारके दानसे दानीका नाम संसारके कोने-कोनेमें फैल जाता है। मरनेके पश्चात् भी उसका नाम बड़े आदर और श्रद्धाके साथ उच्चरित होता है।

किन्तु अपने देशकी अर्वाचीन स्थितिपर एक वार दृष्टिपात करनेसे यह वात शीघ्र स्पष्ट हो जाती है कि इन दिनों इस प्रकारके दानका यहाँ—हमारे देशमें कैसा छीछालेदर किया जाता है। ऐसा नहीं कि आजकल हमारे देशमें दान न दिया जाता हो। इस गये गुजरे जमानेमें भी करोड़ोंका दान होता है। पर सब

पूछा जाय तो ऐसे दानमे देशकाल और पात्रका विचार किञ्चित् भी नहीं रहता। इस प्रकारके दानसे दाताकी थैलियां खाली होती है और कुपात्र (जिसे दान मिला है) के दुर्गुणोको प्रश्रय मिलता है। पात्रा पात्रका समुचित विचार न कर अन्धाधुन्ध दान देनेकी प्रथा भारतमे इन दिनो जोरोसे फैल रही है। परमात्मा इससे भारतका पिण्ड छुड़ाये !!

आधे करोड़से अधिक उन काहिल और नङ्ग धडङ्ग मुस्तण्ड भारतीय साधुओकी ओर ध्यान दौडानेसे शीघ्र ही पता चल जाता है कि पात्रापात्रके विचारसे वञ्चित दानके कारण आज हमारे देशका एक प्रधान अङ्ग कितना शिथिल और निकम्मा हो गया है। पाठको! थोड़ी देरके लिये अपने ध्यानको पूर्व्वकालीन साधु महात्माओकी ओर तो ले जाइये। उनकी स्वार्थ वासना-विहीन करतूतोको यादकर अपनेको धन्य धन्य कीजिये और कीजिये कृपाकर इन अर्व्वाचीन साधुवेशधारी महात्माओकी तुलना, उन प्रचीन महामना साधुओसे जिन्होंने निःस्वार्थ भावनासे प्रेरित होकर केवल स्वदेश भारत वर्षका ही नही, प्रत्युत निखिल ब्रह्माण्डके कल्याण साधनाके निमित सेवाकी वेदीपर अपने आपको बलिदान कर दिया था। आधे करोड़से अधिक आधुनिक महात्मा भिसंज्ञक साधुओसे हमारे देशकी जो बुराई हो रही है वह वर्णनातीत है। परमार्थ की पवित्र स्फटिकोपम धारासे दूर रहते हुए वे स्वार्थकी विकट दलदलमे इस प्रकार

आमस्तक फंस गये है कि इससे उनका निकलना दुष्कर ही नहीं प्रायः एक प्रकार असम्भवसा प्रतीत हो रहा है। आज उनमेसे ऐसे कितने व्यक्ति निकल सकते है जो समाज तथा देशके कल्याण-कामनाके निमित सर्वस्वकी आहुति देनेको उद्यय हो गये हो। दाताओंके दानसे ये अनुचित लाभ उठाते हुए अपने उदरकी पूर्ति करते हैं। दूसरेकी भलाईके लिये जो इनका एक मात्र उद्देश्य होना चाहिये, ये स्वप्नमे भी कोई कार्य्य नही करते। इतना ही नहीं, ये इतना भी नहीं जानते कि समाज-सेवा किंवा लोक सेवा किस विड़ियाका नाम है !! दूसरेके द्वारा प्रदान किये हुए द्रव्यपर निर्भरकर जीवन-यापन करते हुए विषय-वासनामे लीन रहनाही इन लोगोका एक मात्र उद्देश्य हो गया है। इनकी काली कर-तूतसे दिनानुदिन हिन्दू समाजके मत्थे कलङ्क कालिमा लग रही है ! कहना नहीं होगा कि इसका एक मात्र कारण पात्रापात्र-विचार शून्य दानका आधिक्य ही है। आज भारतमे अनेक मठा-धीश महन्त वर्तमान हैं। पर उनमे कितने ऐसे हैं जो करवीर पीठके जगद्गुरु शङ्कराचार्य्यकी तरह लाखोंकी सम्पत्तिपर नजर न दौड़ाते हुए समाज तथा देश-सेवामे संलग्न हो गये हों ?

एक वात और है। आजकल दिन दिन हमारे देशमें सभा सोसाइटियाँ स्थापित की जा रही हैं। इनमेंसे कुछ तो ऐसो हैं जिनका उद्देश्य सर्वथा सराहनोय है। ये अपने उद्देश्यकी पूर्तिमे सर्वदा एवं सर्वप्रकारेण संलग्न हैं। अतः उन्हें तन मन धन—जिस

प्रकार हो साहाय्य प्रदान करना प्रत्येक मनुष्यका प्रथम कर्तव्य होना चाहिये। किन्तु, उपर्य्युक्त सभा—सोसाइटियोंमें कुछ ऐसी भी है जो सिरसे पैरतक आडम्बरसे लदी हैं। उनसे समाजकी भलाई होनेकी जगह बुराई होनेकी अधिक संभावना है। ऐसी सभा-सोसाइटियोंको कौड़ीका दान देना भी महान अनिष्टका कारण होता है और होगा। उनके द्वारा समाजकी जड़ काटी जा रही है। वे समाज तथा देशको रसातलोन्मुख करनेवाली हैं— इन्हें उठानेवाली नहीं। सवल तथा हृष्ट-पुष्ट भिख मंगोंको भिक्षा-प्रदान करना भी देशमें आलस्य अथच काहिलपनको प्रश्रय देना है। आधुनिक पाश्चात्य जगतमे ऐसे कानून बन गये है जिनके कारण कोई भी मनुष्य आमतौर पर भीख नहीं मांग सकता !

अपने प्राचीन धर्म्म ग्रंथोंको देखनेसे भी पता चलता है कि दानके विषयमें हमारे पूर्व्व ऋषि मुनियोंका क्या मत था। महा-भारतमें लिखा है :—

अपात्रेभ्यस्तु दत्तानि दानानि सुवहून्यपि।
वृथा भवन्ति राजेन्द्र! भस्मान्याज्यहुतिर्यथा॥

अर्थात् अपात्रको चाहे कितना ही अधिक दान क्यों न दिया किन्तु वह निष्फल ही होता है। वह इस प्रकार व्यर्थ होता

है। जिस प्रकार कोइ राखमें घीकी आहुतियां डाले। अतः दान-प्रदानमे पात्रापात्रका विचार अवश्य करना चाहिये। कहा भी है :—

पात्रा पात्र विवेकोऽस्ति धेनुपन्नगयोर्यथा।
तृणात्संजायते क्षीरं क्षीरात्संजायते विषम्॥

अर्थात् पात्रापात्रका विवेक ऐसा है जैसे गौ और सर्पका। कारण, गौको तृण प्रदान करनेसे—उसे घास खिलानेसे, दूध उत्पन्न होगा—वह दूध देगी। किन्तु साँपको दूध पिलानेसे विषही उत्पन्न होगा। तात्पर्य्य यह है कि यदि पात्रको थोड़ा भी दान दिया जाय तो वह दान अच्छा फल देनेवाला होगा। वह अच्छे और पवित्र कार्य्योंमें वर्ता जायगा। उससे देश और जातिका हित-साधन होगा। किन्तु, यदि अपात्रको दान दिया जाय तो वह (अपात्र) दानमें पाई हुई रकमको बुरे कार्य्योंमें खर्च करेगा। समाजमें दुराचार और पापपूर्ण वृत्तियोंकी अभिवृद्धि होने लगेगी। परिणामत. देश अवनतिके विकराल गह्वरमें समा जायगा। अतः प्रत्युपकारकी वाञ्छना न रखते हुए सुपात्रको दान देना ही सात्विक दानका एक मात्र उद्देश्य है और होना चाहिये।

अब देखना है कि 'राजस-दान' किसे कहते हैं। गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्ने कहा है :—

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्यवा पुनः।
दीयये च परिक्लृष्टं तद्राजसमुदाहृतम ॥

अर्थात् जो उपकारके वदले उपकार पानेके लिये, फलकी इच्छासे और बड़े कष्टसे दिया जाता है, वह राजस दान है।

प्रायः देखा जाता है कि आजकल इस देशमे ऐसे ही दानियोकी संख्या अधिक है, जो समाजमे नाम और यश कमानेके लिये सदा लालायित बने रहते है। वे दान देते हैं अवश्य, किन्तु उनके दानसे स्वार्थकी विकट गंध आती है। यहाँ कुछ ऐसे नर-पुङ्गव भी वर्त्तमान हैं, जो अपनी स्वार्थ सिद्धिकी लालसासे दूसरेको दान देते हैं। पर स्मरण रखना चाहिये कि इस प्रकारका दान सर्वदा हेय है—त्याज्य है। यथार्थमे, उपकारके वदले उपकार पानेकी आशा रखते हुए दान करनेवाले पुरुष प्रकृत दानी नहीं। सच्चा दानी तो वह है जो दूसरेकी मांगके आगे—दूसरेकी आवश्यकताके सम्मुख अपनी आवश्यकताको तिलाञ्जलि देता है और येनकेन प्रकारेण उस व्यक्तिकी सहायताकर उसे दुःखसे उन्मुक्त करही दम लेता है। वह न तो अपनी दान शीलता दिखाता है और न अपने दानके द्वारा संसारमे प्रसिद्धिकी ही इच्छा रखता है। वह दानको यश और नाम कमानेका साधन बनाना नहीं चाहता। वह समझता है—"दान देना मेरा कर्त्तव्य है—मनुष्यको यथासाध्य दुःखसे उन्मुक्त करना मेरा धर्म्म है" अस्तु।

तामस दानका रूप गीतामे श्रीकृष्ण भगवानने इस प्रकार बतलाया है। वे कहते हैं।—

अदेशकाले यद्दान मपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥

अर्थात् देशकाल पात्रका विचार न करके जो दान दिया जाता है, जिस दानमे सत्कार नहीं जो अपमानसे भरा हुआ है, वह तामसदान है।

यथार्थमे ऐसा दान देनेसे न दान देना ही अच्छा है। हम पहलेही लिख आये हैं कि अपात्रको दान देनेसे कौन कौन हानियां होती है।

किसीका अपमानकर पीछे उसे कुछ प्रदान करना भी महान अन्याय है। आजकल प्रायः देखा जाता है कि कोई लाचार दर्वाजे पर आकर "दुहाई दाताराम!" की आवाज़ लगाता ही है कि गृहस्वामीके क्रोधका पारा बेतरह चढ़ जाता है। वे आपेसे बाहर होकर उस असहाय बेचारेपर गालीकी वर्षा करने लग जाते हैं और कभी २ नौबत ऐसी आती है कि दरिद्रता-दानवीकी विकराल चपत खाये हुए उस बेचारेके झुलसे हुए गालपर एकाध चफ्त भी जड़ देते हैं!!

इतनी दुर्गति करनेके पश्चात् यदि दिल मे कुछ चोट आई तो अन्तमे कुछ देकर ही उससे पिण्ड छुड़ाते हैं। समझमे नही आता

कि दान-शीलतामें सब देशोसे बाजी मार लेनेवाले भारतवर्षके गृहस्थोके आचरण इन दिनो ऐसे क्यो परिवर्तित हो गये हैं। मतलब यह कि "पहले लात और पोछे भात" वाला आचरण भारतीय गृहस्थोंके उपयुक्त नही। ऐसा आचरण उन्हें किसी अवस्थामे शोभा नहीं देता !! इस प्रकारका दान दान नहीं अन्याय का एक उदाहरण मात्र है !!

जगन्नियन्ताकी इस विशाल सृष्टिमें

मनुष्य सभी प्राणियोमे श्रेष्ठ माना जाता है। इसे विधाताने विविध गुणोंसे अलंकृत कर धरातलपर भेजा है। यदि गहरी पैठ लगाकर देखा जाय तो मालूम होगा कि मनुष्य परम पिता परमेश्वरका वह राज-प्रतिनिधि है जो उनकी ओरसे मनोनीत होकर उनके समग्र श्रृष्टि साम्राज्यके प्राणियोंपर शासन करनेके लिये जगतीतलपर भेजा गया है। अन्यान्य प्राणियोंकी अपेक्षा इसे अनेक सद्गुण प्राप्त हैं। ईश्वरने भी इसके आरामके निमित विविध वस्तुओका निम्र्माण किया है। ऐसी दशामें भगवानकी असीम अनुकम्पाका अधिकारी होकर भी उनके द्वारा प्रदानकी हुई अनन्त अलौकिक सामग्रियोंका उपभोग करता हुआ भी यदि वह अपने कर्तव्यसे च्युत हो जाय तो उसकी कृतहीनताकी पराकाष्ठा है !

यह सभी जानते हैं कि मनुष्यगण एक ही पिताकी प्यारी सन्तान हैं। सभी एक ही अनन्तसे निकले हुए अनेक सान्तान हैं।

वे हैं अभूत पूर्व्व ज्योतिर्मय, देदिप्यमान गोला, जिनसे निकले हुए मनुष्य रूपी स्फुलिङ्गगण समग्र भूमण्डलके मनुष्यमात्र भ्रातृ-त्वके उसी मधुर बन्धनसे परस्पर बंधे हैं जिस बन्धनसे किसी परिवारके चार सहोदर परस्पर बंधे रहते हैं। सच्चे सहोदरोंमे जैसा समभाव वर्तमान रहता है, ठीक वैसाही साम्यभाव विश्वके मनुष्योंके बीच वर्तमान रहना उचित ही नही परमाश्यक है। जिस प्रकार अपने सहोदरके दुःखमे समवेदना प्रकट करते हुए उसके दुःखके दूरी करणके निमित्त बद्ध परिकर होना प्रत्येक मनुष्यका कार्य्य है, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की प्राचीन औदार्य्यमयी मधुर सूक्तिको सामने रखते हुए मानव जातिके दुःखमे सहानुभूति प्रकट करना तथा उसकी कल्याण साधनाके निमित यथासाध्य यत्न करना भी उसी प्रकार प्रत्येक पुरुषका धर्म्म है।

संसारमें सभीकी स्थिति एकसी नही।

'चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानिच।'

कोई लक्ष्मीका लाढ़िला देव दुर्लभ सुखोंका अनुभव करता हुआ अपना जीवन सानन्द व्यतीत करता है तो कोई मुट्ठीभर चनाके लिये दर दर मारा फिरता है। कोई घर वैठे गुदगुदे मखमली गद्देपर लेटे २ करोड़का स्वामी बना बना रहता है तो कोई मार्त्तण्डकी प्रचण्ड किरणोंसे पीड़ित होता हुआ अविश्रान्त रूपसे पत्थर तोड़ तोड़कर भी चार पैसा ही

कमा पाता है। कोई भीमका ही अवतार ले अपने शारीरिक बलके कारण संसार प्रसिद्ध होता है तो कोई खाटपर पड़ा पड़ा विना औषधि, विना पथ्यके दारुण यन्त्रणा सहता हुआ मृत्युकी वाट जोहता रहता है !! कहनेका तत्पर्य्य यह है कि संसारमे मनुष्य हर अवस्था और हर किस्मके हैं। धनी भी और निर्धन भी। नीरोग भी और रोग युक्त भी !! ऐसी दशामे यह खयाल करते हुए कि हम सब एक ही पिताकी प्यारी सन्तान हैं, धनियोका यह पावन कर्त्तव्य है और होना चाहिये कि वे अपने उन भाइयोंकी आर्थिक सहायता करें, जो दारिद्रय दावानलसे भस्म प्राय हो गये हो। उन धनियोको यह समझना चाहिये कि विधाताकी ओरसे परमेश्वरके अनन्त भाण्डारसे उन्हे जो विभूतियां मिली हैं सो केवल इसलिये नही कि केवल वे ही इसका उपभोग करे—एक-मात्र वेही उससे लाभान्वित हो। प्रत्युत उन्हें सदा स्मरण रखना चाहिये कि दोनो समय कठिनतासे पेट भरनेवाले उन दीन-दरिद्र भाइयोका भी उनकी सम्पत्तिपर कुछ अधिकार है। उन्हें जान लेना चाहिये कि परम पिताने उन्हे अहोरात्र सुखके पलनेपर झूला झूलनेके लिये ऐश्वर्य्य प्रदान नही किया है। उन्हे ऐश्वर्य्य सम्पन्न करनेमे विधाताकी यह मन्शा कदापि नहीं थी कि वे विषय वास-नामे लिप्त रहकर जीवन यावन करें और उनके सामने उनके समाजमे ही उनके दीन पड़ोसी धनाभाव तथा अन्नाभावसे घुल घुलकर कराल कालके कौर बनते जायं ! धनवान होकर भी यदि

हम अपने सहोदरोको दरिद्रताके भीषण प्रहारसे न बचायें तो हमपर हमारे पिता कभी प्रसन्न होनेको नही। ठीक इसी प्रकार यह बात हृदयङ्गम कर लेना चाहिये कि परम पिता परमेश्वर उन ऐश्वर्य्य सम्पन्न व्यक्तियों पर कदापि प्रसन्न नही हो सकते जो दान प्रदानकी क्षमता रखते हुए भी इस पुण्य कार्य्यसे सदा सर्वदा अलग रहते हैं।

भारतवर्ष सदासे धर्म्मप्राण रहा है। इसकी भित्ति धर्म्मपरही यहाँ, दान देना एक पवित्र धर्म्म माना गया है। मनुष्यके जन्मके साथही साथ यहाँ दान-प्रदानका श्रीगणेश हो जाता है। क्या राजा क्या रङ्क—इस देशमे सभीको किसी-न-किसी प्रकारका दान करनाही पड़ता है।

प्राचीनकालमे यहाके नृपतिवर्गमे तुलादानकी प्रथा प्रचलित थी। वे बराबर स्वर्ण इत्यादि कीमती द्रव्य तौलकर उसे दीन-दुखियोके बीच बांट दिया करते थे। आरम्भसे ही भारतमे मनुष्योंको दानशीलताका पाठ पढ़ाया जाता था। उन लोगोंको यह सिद्धान्त हृदयङ्गम कराया जाता था कि,

"दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्यतृतीया गतिर्भवति॥

अर्थात्—

धनकी गति ता तीन है, दान भोग औ नाश।
दान भोग जो ना करे, निश्चय होय बिनाश॥

किन्तु अब—नई रोशनीके इस ज़मानेमे ये बातें न रह पाई हैं।

मैं पहलेही लिख आया हूं दानकी दुर्गति इन दिनो कैसी हो गई है। अब तो दानकी आड़मे महान् अनिष्टकारी कार्य्य होते हैं। हम अपने आदर्शसे गिर रहे है। अब "वसुधैव कुटुम्बकम्" एक भौखित सिद्धान्त रह गया है। एकही समाजमे यदि हमारा पड़ोसी दानेको तरस रहा हो—उसके बाल बच्चे क्षुधातुर हो यदि हृदय-विदीर्ण कारिणी सिसकिया भर रहे हो, तोभी हमारे हृदयमें किञ्चिन्मात्र वेदना उत्पन्न नही होती। जहन्नुममें जाय हमारा पड़ोसी और उसके बाल-बच्चे! हमारा इससे क्या बनता या बिगड़ता है। पर याद रहे ऐसा भाव—स्वार्थकी चासनीमे पगी हुई ऐसी मनोवृत्ति समाजको एक-न-एक दिन ध्वंस करके ही दम लेगी।

प्रायः कहा जाता है कि धनका दान ही सच्चा दान है। पर यथार्थमे यह बात नही। धन-दान तो है ही। इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकारके दान हैं जिससे मानव-समाजका पूर्ण कल्याण हो सकता है। विद्या-दान, अभय-दान इत्यादि दान भी साधारण दान नही महान् दान है।

वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली कुछ ऐसी हो गई है कि विद्योपार्ज्जन मे टकेको पानीकी तरह बहाना पड़ता है। वर्षोंके अनवरत परिश्रमके साथ हजारो रुपये खर्च किये जायॅ, तब कहीं विश्व-विद्यालयकी एकाध डिगरी नसीब होती है। ऐसी अवस्थामे, हम लोगोका क्या यह कर्त्तव्य नही होना चाहिये कि अवकाश मिलने-

पर हम गरीब विद्यार्थियोको यथासाध्य विद्यादान दें उपकृत किया करें। यदि हममे धन-दानकी समता नही है—यदि हमारे पास अन्य द्रव्यकी कमी है तो हम अपनी विद्यासे—बुद्धिसे दूसरेकी सहायता कर सकते हैं। इस प्रकारका दान हेय नही। बल्कि अन्य दानोकी अपेक्षा विद्यादान सर्व्वोत्तम कहा गया है। यथा :—

अन्न दानं परं दानं विद्यादानमतः परम्।
अन्नेन क्षणिका तृप्तिर्यावज्जीवन्तु विद्यया॥

इन दिनो संसारमें प्रायः सबलोकी ओर निबलोपर दिन दहाड़े अत्याचार हुआ करता है। इन निर्बलो—दीन दुखियोपर दया करके, अत्याचारियोके चंगुलसे छुड़ाकर उनको अभय दान देना हमारा पवित्र कर्त्तव्य होना चाहिये। इन अत्याचारियोके अत्याचारको जो चुपचाप देखकर मौन साधन कर लेता है वह मनुष्य नही—पुच्छ विषाणहीन पशुके समान है। कवि कहता है :—

सामनेही दुर्बलोंपर सबलका,
हो रहा जो घोर अत्याचार है।
हैं फड़क उठती न जो यह देखकर,
उन भुजाओंको सदा धिक्कार है।

यह ठीक है कि आज भारतवर्षमे प्राचीनकाल जैसा दान नही

होता है। कर्ण हरिश्चन्द्र शिवि दधीचि रन्तिदेव उशीनर जैसे महापुरुष अब भारतको गोदमे शोभायमान नही हो रहें है, पर विद्यासागर और बिड़ला तथा पालित और रासबिहारी जैसे दानी सुपुत्रों से इस युगमे भी इसका मुख उज्ज्वल और देदिप्यमान बना है। उपर्य्युक्त महात्माओं के सिवा इसकी गोदमे ऐसे भी असंख्य सुपुत्र वर्त्तमान हैं जो अपने गुप्त दानसे मानव समाज का अनन्त कल्याण कर रहे हैं। अंग्रेजीमे एक कहावत है--"The left hand must not know what the right hand giveth" अर्थात् बाय हाथको भी यह नही मालूम होना चाहिये कि दाहिना क्या देता है। ठीक इसीनीतिके अनुसार कार्य्य करनेवाले आज इस भारतमे अनेक महापुरुष विद्यामान हैं।

दान सभी धर्म्मों मे श्रेष्ठ है। 'दाने सर्व्वं प्रतिष्ठितम्' इस स्वर्ण सिद्धान्तका स्मरण करते हुए, प्रत्येक मनुष्यको अपनी क्षमताके अनुसार दान प्रदान करना चाहिये। दानी सभीके हृदय मन्दिरमे निवास करता है। उसका पुरायमय नाम सुनकर सभीके मस्तक श्रद्धा और भक्तिसे नत हो जाते है। वह सर्वत्र सम्मान की दृष्टिसे देखा जाता है। लोग प्रायः ऐसा समझ लिया करते हैं कि दान-प्रदान करनेसे दाताके धनका ह्रास होता है पर ऐसा समझना भारी भूल है महान् भ्रम हैं। समुद्रका करोडो मन जल वाष्पका रूप धारण कर बादलका रूप धारण करता है और पुनः बूंदें रूपमे पृथ्वीतल पर अवतीर्ण होकर संसारका कल्याण साधन

करता है और मिल जाता है एक वार पुनः अपने उस अगाध भाण्डारमें जिससे वह मेघका रूप धारण कर ऊपर उठा था। इसी प्रकार दाता दान देता है और काल क्रमसे उसके धनकी अभि वृद्धि भी होती जाती है। अस्तु।

मनुष्य विद्या, धन एवं बलसे सम्पन्न होकर भी यदि दान शीलताके गुणसे वञ्चित है तो वह याथार्थमे मनुष्य कहलानेका अधिकारी नहीं। समाजमें उसका वह साधारण सम्मान भी नहीं होगा, जो एक दीन मलीनपर दानी व्यक्तिका हुआ करता है। सारांशमें कहना इतनाही है कि दानरूपी सद्गुणको अपना कर मनुष्य संसारमें वह नाम कमा सकता है जो इतिहासमें सदा अमिट रूपसे स्वर्णाक्षरोंमें लिखा रहता है।

अन्तमें इतना ही कहना अलम् होगा कि देशकाल पात्रका विचार कर अपनी औकातका—अपनी क्षमताका विचार रखते हुए सुपात्रको दान देना प्रत्येक मनुष्य नामधारी प्राणीका पवित्र एवं प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिये। इसीसे धर्म्मप्राण हमारे भारत-का कल्याण होगा।

हमारे कहनेका यह मतलब कदापि नहीं है कि हम दान योंहीं दे दिया करें। कहनेका तात्पर्य्य यह हैं कि आप द्रव्यधन, विद्या दान बलिदान या आत्म बलिदान जिस प्रकारका भी दान दें उप-युक्त पात्र पात्रिका, समाज या देशके लिये दें।

अच्छा तो यह होता कि दानके लिये जगह जगह एक एक

संस्था होती जो दानियोंहीसे बनी रहती हडपबाजोंसे नहीं उन्होंके द्वारा उपयुक्त पात्रको दान बिना जातिवर्णके विचारसे दान दिया जाता। इससे दानियोंके दानका सच्चा प्रयोग होता और लोगोंकी भलाई होती।

हमारे हिन्दुओंके घरों या घरनियोमे यह भाव बड़ा अच्छा है कि यदि कोई घरपर आ जाय तो उसे कुछ दे देना चाहिये पर देखते हैं कि इस भावका अजीर्ण भी हममें हो गया है। वे सद्-गृहस्थ यह नही समझते कि इन ठगोंको हम दान दे कर अपधन धनका दुरुपयोग कर रहे हैं। क्या हमारे घरपर चोर डकैत भी आ जाय तो उसे कुछ दे देना चाहिये। क्या हमारे घरपर एक आततायी याने घरमे आग लगानेवाला या हत्या करनेवाला भी आ जाय तो क्या उसे कुछ दे देना चाहिये। क्या हमारे घरपर हमारी बहु-बेटियोंको बेइज्जत करने भी कोई जाय तो हमे उसे कुछ दे देना चाहिये? कभी नहीं! कभी नहीं!! हमे तो उस समय विचार करना ही होगा कि कैसा यह पात्र है। यदि चोर उठल्ला, डकैत, आततायी या व्यभिचारी होगा तो प्राण देकर उसका प्रतिकार करना होगा। वैसा ही धूर्त, ठग, व्यभिचारी शराबी, गंजेड़ी, भंगेड़ी, गुण्डा बदमाश यदि हमारे घरपर आ जाय तो उन्हें द्रव्य न देकर अर्द्धचन्द्रा दे खदेड़ना चाहिये या दान सोसाइयटीमे भेज देना चाहिये कि उसका विचार कर दान देगी। कोई ऐसा समय दानी होना जो दान मंडल खुलवाता तो बड़ा पुण्य होता।

❋ पांचवां सोपान ❋

स्वदेशी ।

(पूर्वार्द्ध)

जबसे बंगालमें स्वदेशी आन्दोलनका श्रीगणेश हुआ । तभीसे भारतवासी इसकी ओर अधिकाधिक दिलचस्पी लेने लगे हैं । असहयोग आन्दोलनके समयसे महात्मा गांधीने स्वदेशीका महत्व और भी बढ़ा दिया । अब तो अधिकांश लोगोंकी ऐसी धारण हो गयी है, कि वे स्वदेशीके महत्वको स्वराज्यसे कम नहीं समझते । स्वदेशीसे प्रेम होना प्राकृतिक है ।

'स्व' का अथ है अपना और देशीका अर्थ है देशकी बनी हुई चीजें । ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसको स्व (अपना) प्यारा न लगे । आप परदेशमें या और कहीं कितने ही आरामसे क्यों न रहें, परन्तु आपके हृदयमें अपने घरका खयाल हमेशा बना रहेगा । आपको अपनी झोपड़ी दूसरेके रंगमहलसे अधिक प्यारी मालूम होगी, इसमें सन्देह नहीं । यदि आपका लड़का कुरूप, लूला, लंगडा क्यों न हो तौभी आप दूसरेके खूबसूरत लड़केसे अपने बदसूरत लडकेको अधिक प्यार करेंगे । आपकी मुहब्बत जैसी अपने लड़केसे होगी वैसी गैरसे होना असम्भव है । अपनेसे

प्रेम होना स्वाभाविक है। चाहे वह अपना परिवार हो, चाहे अपना घर हो, चाहे देश हो या देशकी बनी चीजें हो। परन्तु दुःखके साथ लिखना पड़ता है कि—हम लोगोकी प्रकृति ऐसी बिगड़ गई है, स्वभाव ऐसा बिगड़ गया है कि हम लोग स्वदेशी वस्तुको अपनानेमें भी आना कानी करते हैं। इसका कारण जब हम ढूंढते हैं तो पता मिलता है कि हमारी मनोवृत्तिके बदलनेमे विदेशी बनियोको शिर तोड़ परिश्रम करना पड़ता है। अत्यन्त घृणित उपायोंसे हमारे व्यापार और कला कौशल नष्ट किये गये हैं। भारतवर्षकी वर्तमान हीनावस्थाको देखकर पहुतसे लोग यह माननेको तैयार ही नही होते कि किसी समय भारतमे इतना अच्छा और इतना ज्यादा वस्त्र तैयार होता था कि भारतकी आवश्यकता पूरी करते हुए ससारके अधिकाश देशोकी आवश्यकता पूर्ण करता था। उनका न मानना ठीक है, क्योंकि उन्होंने जीवन भर भारतको वस्त्रके लिए दूसरे देशोंका मुंह ताकते देखा है। वे देख रहे हैं कि भारतमे जितने वस्त्र बनते हैं वे इतने कम हैं कि यदि विदेससे वस्त्र न आवे तो नंगे रहनेकी नोबत पड़े।

प्राचीन स्थिति।

परन्तु यदि इतिहासको देखा जाय तो इसमें जरा भी सन्देह नहीं रह जाता कि हजारो वर्ष पहिले जब उन्नतिका घमंड करने आधुनिक योरोपियन लोग निरे जंगली थे और वृक्षोकी

कालसे अपना बदन ढांपते थे। उस समय भी संसारमें औद्योगिक भारतका आसन सर्वोपरि था और वस्त्र बनानेकी कला भारतमे उन्नतिकी चरम सीमापर पहुंची हुई थी। अत्यन्त प्राचीन वैदिक कालको जाने दीजिये, रामायण, महाभारत तथा पीछेके कालीदास, माघ इत्यादि कवियोंके समयकी बात भी छोड़िये। भारतीय पुरा तत्वके पडितोंके लेखोंमें यदि यहांकी वस्त्र कलाकी कुछ प्रशंसा मिले तो उसपर भी ध्यान मत दीजिये, केवल बाहरी लोगोंकी सम्मतिपर भी यदि विश्वास किया जाय तौभी यह मानना पड़ेगा कि एक समय था जब रोम, यूनान, चीन, जापान, मिश्र, ईरान आदि देशोंमे भारतका माल आदर पाता था। योरोप के कवियों, लेखकों और प्रवासियोंने भारतकी कारीगरी, कला, कौशल, तथा वैभवकी खूब प्रशंसा भी की है। उनके लेखोंसे यह सिद्ध होता हैं कि एक हजार वर्ष पहिले मिश्रके साथ तथा पांच हजार वर्ष पहले बेबोलेनियाके साथ भारतका वाणिज्य सम्बन्ध था। यहांकी वस्तुएं संसार भरमे भेजी जाती थीं और सबसे अधिक आदर पाती थी। परलोकवासी श्री आर० सी० दत्तका कहना है कि यहांकी कारीगरीकी वस्तुएं संसार भरमें बिकती थीं बगदादके हारूंरशीदके दरबारमे उनकी कदर होती थी, उन्हे देखकर प्रतापी शार्लमन और उनके दरबारी चकित हो जाते थे। एक अंगरेजी कविने लिखा है कि "पूर्वके दूर देशसे यूरोपके नवीन बाजारोंमें आये हुये रेशमी तथा कारचोबीके वस्त्रों और

रत्नोंको लोग आखें फाड़ कर आश्चर्य भरी निगाहोंसे देखते थे-" एकग्रीक ऐतिहासिकका मत है कि इससे ६०० वर्ष पहले भारतमें वस्त्र बनानेकी कला खूब उन्नति पर थी" ग्रीकके प्रसिद्ध प्रवासी होरोडाट्स जो ईसासे ४५० वर्ष पहिले भारतमें आये थे लिखते हैं कि "भारतवासी रूईके बने हुए बढ़ियां मुलायम कपडे पहिनते हैं।" इतिहास पंडित स्टैब्रोका मत हैं कि "भारतमें अत्यन्त प्राचीन कालसे रंग विरंगी छीट बढिया और मुलायम मलमल बनती आई है।" बेन साहब लिखते हैं कि "रूईसे बनाये जानेवाले मालका जन्म स्थान भारत है। और प्रमाणभूत इतिहास कालसे बहुत पहिले ही वहां यह उन्नतिके शिखरपर पहुच चुका था, वहाके बने कपड़े ऐसे सुन्दर होते थे—मानों देवताओंने बनाये हैं। एरापन नामी एक इजिपशियन ग्रीकने ईसाकी पहिली या दूसरी सदीमें एक पुस्तक लिखी थी उससे पता लगता है कि भारतमें बने हुये छीट मलमल और रेशमीके सुन्दर वस्त्र अरबस्थान आदि दूर २ देशोमें जाते थे। मछलीपट्टमके सुती वस्त्र और बंगालके मलमलोको "गंगा" कहते थे—क्योकि ये गंगा नदीके किनारे बनती थी।

मुसलमानोंके राज्यकालकी स्थिति

मुसलमानोंने भारतको खूब लूटा, कुचला और मारा कोई कसर न रखी, बड़े २ बहुमुल्यरत्न छीनकर ले गये परन्तु पीछेसे उन्होंने यहां अपना राज्य स्थापित कर लिया तो भारतकेहित

को ही उन्होंने अपना हित समझा। यही कारण है कि उनके शाशनकालमें भारतके उद्योग धन्धे कला-कौशल रसातलको नहीं पहुचे। उनके समयमें भी वस्त्र बनानेकी कला यहाँ बढ़ी चढ़ी हुई थी। अकेले बङ्गालमे १५ करोड़ रुपये महीना प्रतिवर्ष विदेशों से आता था। सन् १८०७ में डाक्टर बुकाननने कम्पनीकी आज्ञासे वाणिज्यकी दशा जाननेके लिए पटना इत्यादि स्थानोंमें पर्यटन करके जो रिपोर्ट दी थी उससे पता लगता है कि उस समय पटनेमे २४०० बीघेमें रूईकी खेती होती थी। वहां ३ लाख ३० हजार १३६ औरतें सूत काता करतीं थीं। वहांके जुलाहे अपना निर्वाह करके वर्षमें ७॥ लाख नफा पा जाते थे। शाहाबादमें १ लाख ५६ हजार ५०० स्त्रियां चरखा चलाती थीं। वहां ७ हजार ६ सौ ५० करघे चलते थे। भागलपुरमें १२ हजार बीघे कपास बोई जाती थी। वहां तसर बुननेके लिये ३२७५ करघे और कपड़ा बुननेके लिये ७२७६ करघे चलते थे। गोरखपुरमें १७५६०० स्त्रियां सूत कातनेका काम करती थीं। और वहां ६११४ करघे चलते थे। पटना शाहाबाद और गोरखपुर की औरतें सिर्फ चरखा चला चलाकर लगभग ३५ लाख रुपये प्रतिवर्ष कमा लेती थीं। दिनाजपुरमें २४०० बीघे कपासकी खेती होती थी। यहांकी विधवा स्त्रियां ६१,००००, रुपये प्रति वर्ष चरखा चलाकर कमा लेती थीं। और ५०० रेशमके व्यवसायियोंके घराने १२ लाख नफा पाते थे। यहांके जुलाहे प्रति-

वर्ष १६ लाख १४ हजार रुपयेके कपड़े बुनते थे। मालदह जिले की मुसलमान स्त्रियोंमे सूईकी कारीगरीका अत्याधिक प्रचार था। सूत और रेशम कपड़ेमें तरह तरहके रङ्ग चढ़ाकर हजारो मनुष्य अपनी गुजर करते थे। पूर्णियां जिलेकी स्त्रियां प्रतिवर्ष लगभग ३ लाख रुपयेकी कपास खरीदकर उसका सूत कातती थीं और उससे उनको लगभग १३ लाख रुपये मिला करते थे। वहां दरी फीते आदि व्यवसायकी वडी उन्नति थी। फतुहा नवादा तथा गया तसरके लिये विख्यात थे।

तेरह वीं सदीमें मार्कोपालो नामके एक प्रवासी यहां आया था। उसने यहांके मलमलकी वडी तारीफ की है। मुगलोंके शाशनकालमें यहां वस्त्र खूब वनाता था। स्वर्गीय श्री बङ्किम-चन्द्र लाहिड़ीने "सम्राट अकबर" नामके ग्रन्थमें लिखा है कि "सम्राट अकबरने वहुतसे स्थानोमे राजकीय शिल्प शालायें खोली थी। जिनमे बड़ी ही सुन्दर दरियां बनती थीं। उन्होंने रेशम पशमीनोंके वस्त्र वनानेके कामका प्रोत्साहन दे देकर वहुत उन्नतिकी थी। काश्मीर और लाहौरमें शालकी उन्नतिके लिये वहुतसे उपाय किये थे। शाहजहां और औरङ्गजेबके समयमे भी यहां अत्यन्त महीन और सुन्दर वस्त्र बनते थे। ढाकेका मलमलका १० गज लम्बा और ६ गिरह चौड़ा एक थान तौलनेपर ८ तोले ४॥ मासे निकला था। तह करनेके वाद वह भली-अंगूठीके छिद्रमेसे उसपार हो जाता था। प्रायः सब ही

थान इतने ही चौड़ी वजनमें ६॥ तोलेके करीब होते थे। एक कारीगरने मलमलका एक थान सम्राट अकबरको एक बांसकी छोटीसी नलीमे रखकर भेंटकी थी। वह इतना बड़ी था कि अम्वारीसहित हाथी पूर्णतः ढाक लेता था। यदि हरी हरी घासपर बारीक थान बिछा दिये जाते थे तो उनका रङ्ग ओससे इतना मिल जाता था और इतने वारीक होते थे कि पशु घासकेसाथ थानको भी खा जाते थे। सम्राट औरङ्गजेबकी लडकी रौशन आराने एक ढाकेकी मलमल २० तहकी साड़ी पहनी थी जिसे देख कर बादशाह बहुत नाराज हुए, क्योंकि २० पलटोंमेंसे भी उसके सब अङ्गादि दिखाते थे। इससे उस मलमलकी वारीकीका अनुमान किया जा सकता है। इसके बाद भी १३ वीं सदी तक यह व्यवसाय वैसा ही उन्नतपर रहा। सन् १८४६ में ढाकेके एक रेसीडेन्टने एक पुस्तकमें लिखा हैं कि उस समय आधसेर रूईमे २५० मील लम्बा सूत काता गया था। उन दिनो इतना बारीक कताई होती थी कि १७५ गज लम्बे तारकी वजन केवल एक रत्ती होती थी। सन् १६३७ में रायल एसियाटिक सोसाइटीके एक जरनलमें भारतका बना हुई मलमलके मूल्यके विषयमे डाक्तर वारने लिखा था कि सन १७७६ में सबसे बढ़िया मलमलके एक थानको कीमत ७३० रुपये थी। क्या उन्नतिके शिखरपर पहुंचा हुआ योरप अपनी सारी विजली-विद्वान और कलोंका बल रखता हुआ ऐसा मलमल तैयार कर सकता है?

अंगरेज वणिकोंके समयकी स्थिति।

सत्रहवीं सदीमे हिन्दुस्थानी मलमलों और रेशमी वस्त्रोंका इङ्गलैण्ड और अन्य पाश्चात्य देशोमें बहुत व्यापक रूपसे प्रचार हो गया था। साधारणत इङ्गलैण्डके सब लोग भारतके बने कपडे पहिनने लग गये थे। इङ्गलैंडके राज कुलमें भारतकी छींटे बहुत पसन्द की जाती थीं। इङ्गलैंडके बैठक खानों, चेम्बरों घरोमें लगे हुये परदो बिछौनों तकियों तथा बच्चो और स्त्रियोंकी पोशाकोमे चारो तरफ भारतके बने वस्त्र दिखाई देते थे। प्रायः सब कपड़ा भारतसे ही जाता था। पाश्चात्य देशोंके बाजार उस समय भारतके पक्के मालसे भरे रहते थे। अंग्रेज वणिक (ईस्ट इण्डिया कंपनी) भारतीय मालके व्यापारसे विलायतमें (९६) प्रतिशत नफा कमाते थे। ऐसी अवस्थामें भी भारतीय माल विलायत में बहुत सस्ता बेचा जाता था। भारतीय वस्त्रोकी खपत वहां बे रोक टोक बढ़ रही थी, लोग उनपर लट्टू हो रहे थे। अकेले कासिम बाजारसे २२ हजार गाठ कपडा विदेशको प्रति वर्ष जाता था। सन १७१० ई० मे ८४ लाख ९० हजारका तो केवल रेशमी वस्त्र भारतने विदेश भेजा था। मालदहके भीखूशेखनेही अकेले तीन हजार रेशमी कपड़े एक बार फारसकी खाड़ीको राहसे रूसको भेजे थे। लिखनेका तात्पर्य्य यह है कि भारतसे अपरिमित परिमाणमें रेशमी वस्त्र सूती वस्त्र विदेश भेजे जाते थे भारत मालामाल होता जा रहा था।

प्रसिद्ध इतिहास लेखक विल्शनका कहना है कि सन् १८१३ तक वृटेनके वाजारोंमें इंगलैंडके वने हुए मालके मुकावलेमे भारत का माल ५०) या ६०) प्रतिशत कम मूल्यपर वेचा जा सकता था। इङ्गलैण्डका वना हुआ माल न तो भारतके वने हुए मालके मुकाविलेमें सस्ता होता था, और न टिकाऊ और उमदा। मैनचेष्टर और पेशले आदिके वाष्पीय और विद्युत शक्तिसे चलनेवाले यन्त्र उस अवस्थामें भारतके हाथके वने मालका किसी प्रकार भी मुक़ाविला नहीं कर सकते थे और यदि भारतका वाणिज्य नाना प्रकारके उपायोंसे नष्ट न किया जाता जो इंगलैंडके वे कारखाने सदाके लिए मर गये होते।

स्वदेशीके नाशका सूत्रपात।

सत्रहवीं सदीके आरम्भसे ही अंगरेज़ वणिकोंने भारतमें व्यापार करना आरम्भ कर दिया था और इससे वे वड़ा लाभ उठा रहे थे। परन्तु भारतका चढ़ा वढ़ा व्यापार उनको खटकने लगा। वे जानते थे कि दो देश जो परस्पर व्यापार करते हैं उनमेंसे जो पक्का माल वेचता है वह फलता फूलता और शासक वनता है। परन्तु जो कच्चा माल वेचता है खेतीके उपजाये हुए कच्चे मालको अपने यहा तैयार नही करता वह अन्तमें दूसरेसे शासित किया जाता है। स्वेच्छाचारी राजा सरदार या स्वार्थी सदा उसे पदाक्रान्त किया करते हैं और वह दासत्वसे कदापि मुक्त नहीं हो सकता। परन्तु जिस देशमें पक्का माल तैयार होता है उसे व्या-

पारके लिए जहाजी बेड़ा तथा उनकी रक्षाके लिए सैनिक बेड़ा बनाना पडता है। कच्चा माल प्राप्त करनेके लिए नये २ देशोंका आवश्यकता होती हैं। अतः उनपर अधिकार जमानेके लिए युद्धकी तैयारी करनी पड़ती है। इस प्रकार वह देश सदा बढ़ता चला जाता है। इसीसे वे भारतको कृषि प्रधान बनाना चाहते थे। परन्तु उन्हे सफलता कैसे होती? सस्ता कच्चा माल, सस्ती मजदूरी, सदियोंका पुराना अभ्यास और निपुणता भारतके पक्षमें था। इङ्गलैंडको अपनी औद्योगिक शक्ति बढ़ानेकी बड़ी चिन्ता थी। वह भारतके व्यापारको नीचा देखानेके लिए बद्ध परिकर हो गया। भारतसे अगरेजी वणिकोंने व्यापारिक नीतिके प्रयोगमें अपने कौशलका पूरा परिचय दिया। इसके बाद खुशामद और तरह तरहकी चालोंसे भारतीय शासकोंसे इन वणिकोंने भारतमे बे रोक टोक व्यापार करनेका अधिकार प्राप्त कर लिया और मालपर आयात और निर्यात कर दिये बिना ही व्यापार करनेका परवाना लेकर अपना पेट भरने लगे। इससे भारतियोंके स्वतंत्र व्यापारमें धक्का पहुचने लगा और नवाब लोग भी उचित महसूल पानेसे वंचित रहने लगे। भारतमें ज्यों ज्यों इनका जोर बढ़ता गया त्यों त्यों भारतका धन खूब लूटा। सरजान बेग्रोंके कथना नुसार इन बणिकोंके नौकर कम्पनीके लिए किसी वस्तुके बेचने या खरीदनेके समय लोगोंको उनकी इच्छाके विरुद्ध खरीदने या बेचनेके लिए विवस करते थे। उनकी आज्ञाका पालन

न करने पर वे बेरहमोके साथ पीटे जाते थे। लोग जोर जुलमके साथ इन शर्तोंको माननेके लिए बाध्य किये जाते थे कि वे कम्पनी व्यापारियोंके सिवाय किसीसे माल न तो खरीदे और न बेचें। जो माल कम्पनीके नौकर खरीदते थे उनका मूल्य तो कभी कभी लोगोको दिया ही नहीं जाता था। यदि दिया भो जाता था तो वह अत्यन्त कम। उस समयके मेयर कोर्टके जज सर विलियम वाल्टनने लिखा है कि:—"भारत मे अंग्रेजोका वस्त्र व्यवसाय अत्याचारोकी एक अनन्तधाराके सामान हैं। उन्होने देशकी कारोगरोकी सब वस्तुएं अपने कब्जेमे कर रखी हैं। किस कारीगरीका कितना माल कितनी कीमतमे तैयार करनी होगी, इस वातको भी कम्पनी अपने इच्छा नुसार स्थिर कर देती है और इसी कारण दलालोंद्वारा कम्पनीके नौकरोंके पास हाजिर किये जाते हैं और मालका अन्दाज कीमत तथा उसके देनेके समयके सम्बन्धमें कम्पनी अपने सुविधेके अनुसार शर्तें लिखकर उनपर कारीगरोके हस्ताक्षर बलपूर्वक करा लेती है। अनेके कारीगर इसबात पर बाध्य किये जाते थे कि वे और किसोका काम नहीं कर सकेंगे। इन शर्तोंके अनुसार अभागे जुलाहोंको ४०) प्रतिशत नुक़शान होता है। इस कारण जब जुलाहे इकरारनामेके अनुसार माल पूरा नहीं कर सकते थे तो उनका घर-द्वार बेंचकर कम्पनी अपना नुखशान पूरा करती है। अपना रोजगार छोड़ देनेपर भी गरीब जुलाहोंको छुटकारा

नही होता। वे मार पीट और तङ्ग किये जाकर कपड़े बुननेके लिये मजबूर किये जाते हैं। इन अत्याचारोसे वचनेके लिये अभागे जुलाहे अपने हाथका अंगूठा काटकर काम करनेसे वेकार हो वैठते है।

कम्पनीके जुलम और अन्यायकी इंगलैंडमें जव कुछ आलोचना होनेकी सम्भावना होती तो उसके सञ्चालक पार्लियामेटके सदस्यो और उच्च राजकर्मचारियोको अपनी तरफ कर लेते थे।

भारतीयवस्त्रोंका बहिष्कार।

धीरे धीरे जव कम्पनीने भारतमे अपना राज्य स्थापित कर लिया तो उसने भारतके सब उद्योग धन्धे और व्यापार अपनी मुट्ठीमे कर लिये। विलायतीमालकी रक्षाके लिये भारतके कपड़ो पर प्रति शत ७०) रुपयेसे ८०) रुपये तक महसूल लगा दिया और भारतमे वृटिशमाल विना किसी करके लाया गया। भारतकी छीटपर पहले तो डेढ़ आनेसे तीन आनेतक फी गज महसूल लगाया गया। फिर धीरे २ इङ्गलैंडमे उसकी खपत कम करनेके लिये कर बढ़ाया गया। भारतीय छींट तथा रेशमी वस्त्रोपर सन् १७८७ मे जहां १६॥ पौंड और १८ पौंड कर था। वहा सन् १८०३ मे २५ और ३३ पौड कर दिया गया। सवसे अधिक अन्यायकी वात तो यह की गयी कि विलायतका वना कपड़ा तो भारतमें २॥) रु० प्रतिशत कर वेंचा जा सकता

था। परन्तु भारतका कपड़ा भारत ही में १७॥ प्रतिशत कर देकर वेंचा जाता था। जब इससे काम न चला तो यह कानून बनाया गया कि जो लोग इङ्गलैंडमे हिन्दुस्थानी छीट वेचेगे उन पर २००) और जो खरीदेंगे उनपर ५०) रु० जुर्माना किया जायगा। परन्तु वहाके लोग भारतीय वस्त्रोंके यहातक प्रेमी थे कि इससे भी हिन्दुस्थानी मालकी आमद न रुक सकी। तब कई २ कानून बनाये गये कि हिन्दूस्थानी छीट या रेशमी कपड़े या वहाके रंगे तथा छपे हुये किसी प्रकारके वस्त्र इङ्गलैंडमें काममे न लाये जांय। भारतसे जो माल आवे वह या तो कोठियोमें पड़ा सडे या वापस भेज दिया जाय। इस प्रकार ३० साल तक कडा कर लगाकर और विलायतमे भारतीय मालका कानूनद्वारा वहिष्कार करके भारतका औद्योगिक कला विशेषकर वस्त्र व्यवसायका नाश किया गया।

जब भारतके शिल्पकी जड़ कट चुकी, जब यहांका वस्त्र व्यवसाय मृत प्राय हो गया, जब विलायती कारखानोकी काफी उन्नति हो गयी और उनसे इतना सस्ता माल उसका मुकाबिला करनेमें असमर्थ होगया तब संरक्षणनीतिको छोड़ इङ्गलैंडने उदार नीतिको अङ्गीकार किया जिससे भारतके मृतप्राय व्यवसाय अधिकाधिक नष्ट होता गया।

(उत्तरार्ध)

पाठकों ! आपको अब भलीभांति मालूम होगया कि, अत्यन्त प्राचीनकालमें भी हमारा कला-कौशल संसारमें सबसे बढ़ा चढ़ा था। हमारे मुक़ाबलेमें कोई देश सस्ता टिकाऊ और सुन्दर माल दे नहीं सकता। यही कारण था कि सर्वत्र भारतीय मालका सिक्का जमा हुआ था। आप यह भी समझ गये होंगे कि मुसलमानोंके राजत्वकालमें हमारा व्यापार सम्पूर्ण एसिया अफ्रिका और योरपमें होता था और उससे हम लोगोंको प्रति-वर्ष करोड़ों रुपया मिल जाया करते थे। अब आपने यह भी जान लिया कि हमारे कला—कौशलके नष्ट होनेका प्रधान कारण क्या है। हमारी अकर्मण्यता, हमारी बदकिस्मती या जिस कारणसे हो, इस समय हमारा व्यापार नष्ट होगया है, हमारी शिल्पकलायें मृत प्रायः हो रही हैं। इस हालतमें हम अधिक दिनों तक जिन्दे रहेंगे यह सम्भव नहीं है। इस समय अपने नष्ट वैभवको हमें पुन. प्राप्त करना पड़ेगा अथवा संसारसे मिट जाना पड़ेगा। हमारे पूर्वजोंने थोड़ी गलती की जिसकाफल अब हम लोगोंको भोगना पड़ता है। इस समय कठिनाइयोंके भयसे यदि हम पस्त हिम्मत होकर बैठ रहेंगे तो आनेवाली पीढ़ियोंके शिरपर परतन्त्रताका इतना बोझ लद जायगा कि उनका स्वतन्त्र होना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जायगा।

लोग उस समय परतन्त्रताको बेड़ीसे विवशता और क्रूरता

पूर्वक जकड़े जाकर हम लोगोंको कोसेंगे। इसलिये हमको अभीसे ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिसमें हमलोग भी सुखी रहें और आनेवाली पीढ़ियोंको स्वतन्त्रता प्राप्त करनेमें अधिक झंझ-टका सामना न करना पड़े। यों तो इसके लिए वहुतसे तरीके हैं परन्तु सवसे निर्विघ्न और सुगम पथ स्वदेशी व्रतका ग्रहण है। यह व्रत कल्पवृक्षके समान मन वांछित फलको देने वाला है। इस एक ही व्रतके प्रतापसे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारो पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं।

कमखर्ची और सस्तापनमें स्वदेशी और विदेशी वस्तुओंका मुकाबला।

जिस समय रेल नहीं थी उस समयकी वात है कि एक सेठ-जीको कलकत्ता जानेका वड़ा शौक था। वे अकसर पूरव जाने वाले तांगेवालोंसे कलकत्तेका किराया पूछा करते थे। किराया अधिक सुनकर सेठजीका हौसला पस्त हो जाया करता था। एक दिन सेठजी सवेरे निवटनेके लिये जङ्गलकी ओर चले। संयो-गवश उनको रास्तेमें एक ऊंटवाला मिला जो वड़ी तेजीसे पूरव तरफ जा रहा था। सेठजीने ऊंटवालेसे पूंछा कि कहांतक जावोगे? ऊंट वालेने कहा मैं कलकत्तेतक जाऊंगा। कल-कत्तेका नाम सुनते ही प्रसन्नताके मारे सेठजी उछल पड़े। जब सेठजीने ऊंटवालेसे कलकत्ते तक पहुचानेका किराया पूंछा तो

ऊंटवालेने कहा कि आप प्रसन्नता पुर्वक जितना दीजियेगा, मैं उतने हीमें आपको पहुचा दूंगा। सेठजी सस्ता किराया सुन-निबटना भी भूल गये और अपने लोटेको वहीं पर पटककर अपने नौकरसे कह दिया कि जाकर सेठानीसे कह दे किवव जह सस्ता कियायाके मै कलकत्ता जा रहा हूं। यद्यपि सेठजीको कलकत्ता जानेकी कोई आवश्यकता नहीं थी परन्तु सस्तापनके कारण सेठ जी कलकत्ता जानेको तैयार हो गये और ऊंटवालेने समझा कि मुझे कलकत्ता जाना जरूर हैं जो कुछ सेठजीसे मिल जाय वहा वहुत है। जिस प्रकार सेठजी सस्तापनके कारण कलकत्ते चले गये थे उसी प्रकार हमलोग भी सस्तापनके कारण विदेशी माल खरीद रहे हैं। इसका परिणाम कैसा, भयङ्कर हो रहा है यह आगे बताया जायगा। परन्तु देशी वस्तुके मुकाविलेमें विदेशीवस्तु सस्ती और टिकाऊ भी नही होती। परन्तु जरा चटकीला और फैशनेवल होनेके कारण हमारे मन चले देश वासियोका चित्त उसपर अटक जाता है और वे क्षणिक लालचमे पड़कर गाढ़े पसीनेकी कमाई वर्वाद कर देते हैं। उस समय वे अपने वूढे पुरानेकी कहीं हुई कहावतोंको भूल जाते हैं। ऐसे मनचले यारो के लिये शायरोंने कह रखा है कि :—

रूखा सूखा खायके ठंढा पानी पी।
देख परायी चूपड़ी मत ललचावे जी॥

जोश और लोभमे पड़कर जो लोग विदेशी वस्तु खरोदते हैं वे होश आनेपर निश्चय पछताते हैं। देशी वस्तु खरीदनेवाले कभी नहीं पछताते। क्योंकि देशी वस्तु पुरानी होने या टूटनेपर भी उससे कुछ न कुछ दाम निकल ही आता है परन्तु विदेशी वस्तु टूटनेसे एक अधेला भी निकल नहीं सकता।

अब देशी दीवालगीरको लीजिये, जो चार आनेमे पीतलका दीवा आपको मिलेगा। उसमें पैसेका अंडी तेल डाल दीजिये। फिर उसको जहां पसन्द हो जला दीजिये। न छलक काला होनेका डर न कोई रोग होनेका डर न आंख खराब होनेका डर, न घर काला होनेका डर, न पैर लाल होनेका डर, बल्कि उस धुएंका काजल बनाकर यदि आंखमें अंजन कर लीजिये तो नेत्रके सब रोग दूर हो जांय। और पुराना होने टूटनेपर भी यदि आप उसको बेचेंगे तो कुछ उससे दाम निकल ही जायगा। जितना विदेशी वस्तुका व्यवहार हमे निर्धन बना रहा है उतना ही विदेशी पहनावा भी हमे निर्धन बना रहा है। हम नीचे एक नकशा देते हैं जिससे आपको पता लगेगा कि क्योंकर विदेशी पहनावा अहित और निर्धन कारक है। प्राचीन समयमें एक आदमीको अपने अंगोंकी रक्षा करनेके लिए कितने मूल्यके कपड़ोंकी आवश्यकता पडती थी उसका वर्णन हम नीचे देते हैं।

साफा	१	मूल्य	१)
कुरता	१	,,	।)

धोती	जोड़ा	१	मूल्य	१॥)
अच्छा	दुपट्टा	१	,,	॥॥)
जूता	जोड़ा	१	,,	॥॥=)
			कुल जोड़	४।=)

यह तो आजसे ४० वर्ष पूर्व पहिलेका खर्चा है। किन्तु वर्तमान महादुर्भिक्षके समयमें भी जबकि कपड़ा चौगुनी कीमत पर है, एक हिन्दुस्तानी पहिनावेमें निम्नलिखित व्यय है।

सादी पगड़ी	१	मूल्य	३)
कुरता या मिरजई	२	,,	२)
जोड़ा धोती	१	,,	४॥)
अच्छा दुपट्टा	१	,,	२)
जूता जोड़ा	१	,,	२)
		कुल जोड़	१३॥)

कुल १३॥) रुपये खर्चा होंगे जिसमे वर्ष भर गुजर हो सकता है। किन्तु स्मरण रहे कपड़ा स्वदेशी मोटा और मजबूत होना चाहिये। बिलकुल साफ रखनेके लिए धोबी आदिकी धुलाई नाई की बाल बनायी ३) वार्षिक और समझ लीजिये। यदि एक दो कुरते या साफा अधिक रखना होय तो ५) रुपये और मिला दीजिये अर्थात् २२) रुपये सालमें एक भला आदमी वर्ष भर

अच्छी तरह वस्त्र पहिन सकता है। अब जरा आजकलके फैशनकी लिष्टको भी पढ़िये।

१	फिल्टकैप अच्छी	मूल्य	४)
१२	शोशियां वालोंमें लगानेके तेलकी प्रति मास एक एकके हिसाबसे वर्षभर		१२)
१	ऐनक (चश्मा)		६)
१	बाल काढ़नेकी कंघो		≡)
१	टोपी साफ करनेका ब्रुश	,,	।≈)
१२	बड़ा साबुन (वर्षभर)	,,	२।)
१	टूथ ब्रुश	,,	।)
१	रास्कोप घड़ी	,,	५)
१	घडोका चैन	,,	॥।)
१	पतलून	,,	४॥)
१	गेलिस	,,	१॥)
४	पैरका मोजा जोड़ा	,,	२)
१	जोड़ा मोजोंके बंधन	,,	।≈)
१२	डिब्बी टुथ पाउडर (वर्षभर)	,,	३)
३	बनियायन	,,	३)
४	कमीजें	,,	३)
१	एकसेट कमीजकी बटन	,,	।)
२	वेस्टकोट	,,	४)

२	हाफ कोट	मूल्य	१२)
२	नेकटायी	,,	१॥)
१	वो	,,	।≈)
१	क्लीप	,,	।)
१	शीशी बूट पालिश	,,	≠।)
१	ब्रुश बूट साफ करनेकी	,,	।)
१	बूट पहननेका आकडा	,,	≡)
६	रुमाल	,,	१॥)
१	वाकिंग छड़ी	,,	।≈)
२	जोडा धोती भी चाहिये जो बढियाँहो	,,	६)

कुल जोड़ १०१।≡)

कुल मिजान १०१।≡) हुआ। अभी दो खर्च और बाकी है जिसके बिना फैशन किसी कामका नहीं। वह आठ आना मासिक नाई और बारह आना मासिक धोबी। वर्ष भरके लिए १५) रुपये और मिला दीजिये। अर्थात् एक वर्ष हमे अंगरेजी फैशन बनाये रखनेको ११६।≡) खर्च पडते हैं। अब घरमें पतलून पहनके बैठना कठिन है, इसलिये कुर्सी और मेजोंकी सृष्टि हुई। और कई फैशन सम्बन्धी खर्च हैं जैसे चाय उसकी २१ कात्रियां और प्याले सिगरेट आदि। इसका अनुमान आप ही कीजिये कि अपव्यय होता हैं। यदि भारतीय पहिनावेमे २२) रुपये

खर्च होते हैं वो विदेशी पहिनावेमें उससे पांच गुने अधिक होते हैं। यह पैसा विदेशियोंको चला जा रहा है। इसके अति-रिक्त कई महाशय ओवर कोट पहिनते हैं। इन कोटोंके बाहोंपर तथा पीछे कमरपर सामने दुहरे बटन व्यर्थ लगा दिये जाते हैं। कई लोग बेस्ट कोटोंके कालरोंपर २-३ बटन व्यर्थ ही लगा देते हैं। कपड़ोंकी सिलाईमें कभी २ कपड़ोंके मूल्यसे अधिक सिलाई देनी होती है। यदि हम विचारें तो इससे हमें हमारे कुटुम्बों और समाज तथा देशको कुछ भी लाभ नहीं। बल्कि भारी हानि हो रही है। यह विदेशी फैशन और पाश्चात्य सभ्यताको वृद्धि एवं दुर्भिक्षका क्रीड़ा स्थल बना रहा है। हमारे पाससे विदेशी लोग प्रति वर्ष १ अरब ४५ करोड़ रुपये व्यापारकी बदौ-लत लेकर मालामाल हो रहे हैं और हम ऐसे भोंदू हैं कि दूसरे मुल्कोंसे रुपया लाना तो दूर रहा पासका रुपया भी बचा नहीं सकते। जबतक विदेशियोंको १ अरब ४५ करोड़ रुपयेका लाभ भारतसे बना रहेगा तबतक वे भारतको सब प्रकारसे दबा रख-नेके लिये भगीरथ प्रयत्न करेंगे। इसलिये यदि आप दासतासे अपना पीछा छुड़ाना चाहते हैं तो आजहीसे विदेशी वस्तु नहीं लेनेकी प्रतिज्ञा करें। जब विदेशियोंको यहांसे कुछ मुनाफा नहीं होगा तो वे स्वयं घबरा कर आपको औपनिवेशिक स्वराज्य देकर किसी प्रकार अपना पीछा आपसे छुडायेंगे। जाने रखें कि भारतको सब प्रकारसे पराधीन

प्रधान कारण भारतमे राज्य करना नहीं, बरन व्यापार चलाना है। लार्ड कर्जनने एक समय कलकत्तेमे अंग्रेज व्यापारियोंके यहां दावत खानेके समय कहा था कि "हमारा और आपका उद्देश्य एक ही है हम शासनके द्वारा और आप व्यापारके द्वारा भारतका धन ले रहे हैं।

विदेशी वस्तुके प्रचारसे हानि।

मान लीजिये कि आप एक परचूनकी दूकान करते है। आपके नगरमें कसेरी, लोहार, तेली और तांती इत्यादि सब पेसे वाले रहते हैं। आपको एक कुदालकी जरूरत है। आपने छक्कू लोहारके यहांसे १॥) मे एक कुदाल खरीदी, आपका रुपया अब छक्कू लोहारके यहा चला गया। अब छक्कूको कपड़ेकी जरूरत हुई और वह कपडा खरीदनेके लिये बुद्धू तांतीके यहां गया और एक जोडा धोती २॥) रुपयेमें लाया। आपका रुपया अब छक्कूके पाससे बुद्धूके पास चला आया। अब बुद्धू को एक लोटेकी जरूरत हुई और वह टुन्ना कसेराके यहांसे २) रुपयेमें एक लोटा मोल लिया। आपका रुपया तांतीके यहांसे कसेरेके यहा चला आया। अब टुन्नाको तेलकी आवश्यकता हुई और उसने मिसरी तेलीके यहां और २) रुपयेका तेल खरीदा, अब आपका रुपया तेलीकेपास चला आया। अब तेलीको चावल दालकी जरूरत हुई और उसने आपकी दुकानसे १) रुपयेका

चावल और आठ आनेकी दाल मोल ली। आप अब सोचिये कि आपका वह रुपया जो आपने कुदालके बदले छक्कूको दिया था वह फिर लौटकर आपके पास चला आया। यदि आप देशकी चीज न खरीदकर बिलायती कुदाल खरीदते तो आपका वह रुपया आपकेपास कभी लौट कर नहीं आते। वह रुपया सात समुद्र पार चला जाता। पर हां, दल्लालीके बतौर दो चार पैसे यहाके दूकानदारोंको अवश्य मिल जाते। परन्तु इस करतूतसे आपके मत्थे अपने भूखे भाइयोंके मुंहसे रोटी छीनकर मोटे विदेशियोंको खिलानेका जघन्य पाप लगता। जो लोग विदेशी वस्तु खरीदते है उनके शिरपर देशीकला-कौशलके नष्ट करनेका और दरिद्र सिल्पकारोंको भूखकी विषम ज्वालासे तड़पा कर मारनेका अवश्य पाप लगता है।

विदेशी वस्तु और गोहत्या।

पेट बड़ी बुरी वस्तु हैं इसको भरनेके लिये संसारके मनुष्य नाना भांतिके उद्यम करते हैं। यह सोचनेकी बात है कि जब आप देशी वस्तुके स्थानपर विदेशीवस्तु खरीदेंगे तो देशके कारीगर निश्चय भूखों मरेंगे।

भूखकी ज्वालाको शान्त करनेके लिए वे कुछ न कुछ उपाय जरूर करेंगे। उस समय वे क्या करेंगे? कला कौशल तो आपने नष्ट कर ही दिया, अब पेट भरनेके लिए या तो वे नौकरी करेंगे या

कास्तकारी करेंगे या चोरी करेंगे या भीख मागेंगे या धर्म गवावेंगे। नौकरीकी बात न पूछिये, १०) रुपये महीनेका जहां काम खाली हुआ और अखबारोंमें "वान्टेड" निकला कि हजारों दर्खास्त पहुच जाती हैं। खेतीने तो और गजब ढा रखा है। एक तो देशी कारीगरीका सत्यानाश और दूसरे गल्लेकी रफ्तनी दोनोंने जमीनका मूल्य सौगुना चढ़ा दिया। जिस जमीनको, कोई पूछता भी नहीं था, गौवे चरती थीं, वह जमीन आज ५०) से लेकर २००) रुपये बीघा सलामी और पाच रुपयेसे लेकर १०) रुपये बीघा तक मालगुजारी पर बन्दोवस्त किया जाने लगा है। जमीनके ग्राहकोंको इस ओर अधिक आते देखकर जमीन्दार भी मचलने लगे और कहीं तो दो वर्षमे और कहीं चार वर्षमे मालगुजारी बढ़ाकर कास्तकारोंको दरिद्र बना डाला। आज कल एक आदमी यदि किसी जमीनपर १००) रुपया बीघा सलामी और ५) रुपये बीघा मालगुजारी देना चाहता है तो दूसरा आदमी उससे अधिक देकर लेनेके लिए प्रस्तुत हो जाता है। इसका कारण क्या है समझें? अब ज़मीन परती रही थोड़ी, और लेनेवाले हुए अधिक। इसका परिणाम यह हुआ कि गोचर भूमि बिलकुल नष्ट हो गयी। गोचरभूमि नष्ट हो जानेके कारण चारा दुष्प्राप्य हो गया जिससे गरीब किसान गोपालनेमे असमर्थ हो गये! अब देखनेमें आता है कि अच्छी २ गौवें भी कसाई खरीद कर उसका वध करते हैं। भीषण गोहत्याके

कारण देशमें शुद्ध दूध और घीका मिलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया। हिसाव लगाने वालोंने हिसाव लगाकर यह साबित किया है कि प्रति दिन ७० हजार गौवे कसाइयोंके छुरोके नीचे छठपटा कर सूर्य्योदयके समय प्राण गवांती हैं। इसके अतिरिक्त विदेशी नायक विदेशी चीनी, विदेशी वस्त्र, विदेशी औषधि और अनेक फैशनेबल वस्तुएं गोरक्त, गोअस्थि, गोजर्वी, गोखुर आदि अपवित्र पदार्थ न्यूनाधिक परिमाणमे अवश्य रहता है। इस विषयके ऊपर यदि विस्तार पूर्वक लिखा जाय तो यह लेख डवल पोथेका रूप धारण कर सकता है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

कहावत प्रसिद्ध है कि खरबूजेको देखकर खरबूजा भी रंग बदलता है। परन्तु हम लोग खरबूजेसे भी गये बीते है। नित्य हमारे सामने एकसे एक बढ़कर घटना होती है परन्तु हम उससे कुछ सबक नही सीखते। स्वदेशी आन्दोलनके समयकी बात है जो उस समय हिन्दी बंगवासीमे छपा था। वह इस प्रकार है "एक योरोपियन साहबके घोड़ेकी जीनका (जो घोड़ेकी पीठ पर रखी जाती है) कुछ हिस्सा टूट गया था। वह साहब अपने साईसको ५) रुपये देकर किसी यूरोपियन दूकानदारके यहां मरम्मत करानेके लिए भेजा था। उस दूकानदारने उस सामानकी मरम्मत करानेकी मजदूरी ७) मांगी। उतने रुपये उसके पास उस समय नहीं रहनेके कारण उसने उसकी योरोपियन दूकानमे मरम्मत न कराके एक हिन्दुस्तानी कारीगरके यहां २) रुपयेमें

मरम्मत करायी। बाकी रुपये लेकर वह वफादार साईस साहबके पास गया और रुपये वापस कर दिये। साहबने रुपये वापस करनेका कारण पूछा। साईसने साफ २ कह सुनाई। साहब यह सुनकर आग बवूला हो गया और साईसकी तनखाहसे उतने रुपये काट कर (जितने कि उसने हिन्दुस्तानी कारीगरको दिये थे) उस यूरोपियन दुकानदारके पास जिसके पास साईसको भेजा था भेज दिये। कहिये जातीयता और स्वदेश प्रेमकी हद हो गयी। उस अंग्रेजने सस्तेपर जरा भी खयाल नहीं किया। उसने अपने देशवासियोंके ऊपर खयाल किया यह आप जान रखें। जिस मनुष्यके हृदयमे अपने देशकी वनी हुई चीजोंके ऊपर प्रेम नहीं है, जिसको देशके भूखे कारीगरोंके ऊपर तरस नही है भला उसके शुष्क हृदयमे स्वदेशप्रेम कभी उदय हो सकता है? जिसने देशोद्धारके नामपर ज़रा मंहगीको बरदास्त दहीं किया, चटकीले फैसनेवल और विलाशिताके सामानको नहीं छोड़ा। भला, आप उनसे देशोद्धारके कार्यमे किसीरूपसे सहायताकी आशा करते हैं? ऐसे ऐश पसन्द मनुष्य कभी भूलसे भी कंटकाकीर्ण मार्गमे पदार्पण नहीं करते, ऐसे मनुष्य पहले भी थे, आज भी हैं, और भविष्यमे भी रहेंगे। अब आपसे प्रार्थना हैं कि आप अपने हिस्सेका कार्य्य उत्साहपूर्वक करते चलें क्योकि :—

पहुच जाते है वही, मंजिले मकसूद तलक।
गिरते पड़ते भी जो आगेको बढ़ा करते हैं॥

❋ छठा सोपान ❋

सत्संगति।

भारतके लोग आजकल खूब पढ़ते हैं। डिग्रियां भी खूब हासिल करते हैं। यहां तक कि डाकप्यून भी मैट्रिक रखे जाते हैं। स्कूल कालिजोंकी भरमार है। अब हमारे पढ़े लिखे भाइयोंकी संख्या बढ़ती जा रही है। तौ भी भारतमें स्वास्थ्यका श्राद्ध होना बढ़ता ही जाता है और रोगोंकी वृद्धिके विषमें कहांतक लिखें। दैनिक समाचारपत्र मासिकपत्र या और किसी प्रकार की सूचनाओंमें देखो तो रोगोंकी घुड दोड़सी हो गयी है। पढ़े लिखे लोगोंने तो इस बातमें बढ़कर हाथ मारा है।

यह सब बढ़ रहा है, इसका क्या कारण है? हृदय अन्धकारमय रहना, कलुषित भोजन, मादकद्रव्योंका सेवन इत्यादि। कविका कहना है:—

यादृशं भक्षये दन्नं, बुद्धिर्भवति तादृशी।
दीपस्तिमिर मश्नाति कज्जलं च प्रसूयते॥

अर्थात् मनुष्य जैसा पदार्थ खायेगा वैसी ही उसकी बुद्धि होती है। दीपक अन्धकारको खाता है तो उससे कजली ही

पैदा होती है। ठीक यही उदाहरण हमारे नवजवानो और जवानोका हो रहा है। एकके साथ रहनेसे उसके साथी साहव का दिमाग भी फाकता होने लगा। उन्होंने भी उसीपथमे कदम बढ़ाया जहां उनके साथी साहव फिसलकर अंडाचित्त हुए थे। फिर क्या था जितने आतेगये सबके सब उसी जगह पहुंचे जहां आते ही फिसलकर जमीन चूमना पड़ता है।

सज्जनों, पहले यह पढ़नेकी प्रथा नहीं थी। पहले तो वरसो गुरूजीके पास लड़का रहता और हृदय बनाता था। हृदय ऊंचा हुआ, विचार ऊंचा हुआ आदर्श ऊंचा हुआ तो पढना आसान बात थी। पढ़कर जब गुरुकुलसे बाहर निकले तो ऊंचा आदर्श लेकर निकले। धर्म्म प्रेम जातिप्रेम और देशप्रेमसे लबा लब निकले। शिक्षाका फल मिला और देशको एक सच्चा पुरुष मिल गया। तो क्या आप यह कह सकते हैं कि बिना सत्सङ्गतिके विद्या किसी कामकी हो सकती है? जहर खानेसे भूखे रह जाना अच्छा हैं। वैसे ही शिक्षा पानेके लिये अपने बच्चोंको बुरी सङ्गतमें देकर उनका जीवन ही वर्बाद कर देना अपने सन्तान को जहर देना हैं। इस कुसङ्गति राक्षसीने तो हमारे होनहार बच्चोके कोमलहृदयको ऐसा चाट लिया है कि वे स्वयं अपना स्वास्थ्य, अपना अमृत धन दिमाग, अपमी अमिट सम्पत्ति बुद्धि और अपना सर्वस्व वलवीर्य्य, उत्साह, साहस खोकर अकिञ्चन हो, "प्रभो मे नौकरी भिक्षा देहि" कहते हुए निकते हैं।

गोलोक वासी बाबू हरिश्चन्द्रने ऐसे पढ़े लिखे लोगोंसे दिल्लगी की है। उन्होंने एक पहेलीमें लिखा है कि:—

एक बुलावैं चौदह धावैं,
निज निज पेट खलाइ दिखावैं।
ताहूपर नहिं भरता पेट,
क्यों सखिसाजन ? नहिं 'ग्रेजुएट' ॥

स्वर्गीय प्र ाप नारायण मिश्रने अपने "तृप्यन्ताम्" पुस्तकमें अपने पिताका तर्पण करता हुआ पुत्रसे कहवाया है कि :—

निजला निज भाषा निज गौरव,
निज कुल धर्म्म कर्म्म अभिराम।
कछु न सिखायो हमहि हाय तुम,
सावधि बनायो उदर गुलाम।
अनमिल ब्याह अनवसर करिके,
सब सुविधा करि दई हराम।
का मुख लहि कहि श्रद्धा सो
हम कहैं पिताजी, 'तृप्यताम्' ॥

मेरी तो राय यहांतक है कि अपने सन्तानको पढ़ानेमें आठ आना खर्च करना हो तो उस बच्चेके चरित्र सङ्गठनके लिये महा-

त्माओसे सत्सङ्गति करानेमें सोलह आने खर्च करें। ख्याल रहे! लडके कोरे कागज हैं। उस कोरे कागजपर जो कुछ लिखोगे वैसा ही उसका आदर होगा। हुडी लिखोगे तो रुपये मिलेंगे, वेद लिखोगे तो बड़े २ विद्वान उसका आदर करेंगे और यदि उस पर गालिया लिखोगे तो जूतो पैजार भी शुरू हो जायगी। वैसे ही बच्चोंके हृदय कोरे कागज हैं! उनपर जैसा संस्कार डाला जायगा। वैसा ही उसका आदर होगा।

भर्तृ हरिजी लिखते हैं:—

"त्यजदुर्जन संसर्गं भज साधु समागमम्।
कुरु पुण्य महोरात्रं स्मर नित्यम नित्यताम्॥

अर्थात् दुष्टोंका साथ छोडो और महात्माओंका साथ करो। दिन रात धर्मकार्य्य करो और अपनी अनित्यताका सदा ध्यान रक्खो। कुसङ्गति और सत्संगतिका गुण ठीक वायुकी तरह होगा। बुरे संसर्गसे वायु दूषित हो जाती है और सैकडोंके जानका गाहक हो जाती है। और अच्छे पदार्थोंके संसर्गसे वही वायु रोग छुडानेवाली होती है। आकाशसे गिरा हुआ जल स्वच्छ स्वादिष्ट और सुखकारक होता है,पर वही विविध स्थानोंके संसर्गसे विविध गुणकारी हो जाता हैं। वैसे ही गर्भसे निकलता बच्चा सब कुछका ज्ञाता नही हो जाता बल्कि जैसा साथ या ... होगा वैसा ही लड़केका स्वभाव भी होगा। कसाईके ... स्वभाव स्वत हत्या करनेवाला हो जाता है, तथा एक

जैनीके लड़केका स्वभाव स्वतः दयालु या किसी जीवपर हाथ उठानेका विरोधी होता है। इसलिये जैसा संसर्ग रखोगे वैसा ही फल होगा। केवल पढ़नेसे कुछ होनेका नहीं।

"पिये रुधिर पय ना पिये लगी पयोधर जोंक" शास्त्र तो अमृत स्वरूप है सही पर क्या किसी प्रसूता स्त्रीके स्तनमें जोंक लगेगी तो उसके अमृत कलसी स्तनसे दूध लेगा? नहीं! वह तो उसका खून चूसेगा। वैसे ही जिस पुरुषका बुरी सङ्गतसे स्वभाव भ्रष्ट हो गया हैं वह क्या शास्त्रके अमृतमय उपदेशको ग्रहण करेगा। वह तो उससे भी दुर्गुण ही ग्रहण करेगा।

रामायणमे लिखा है :—

शठ शुधरहिं सत्संगति पाई।
पारस परसि कुधातु सुहाई॥
(तुलसीदास)

अर्थात्—जैसे पारसके साथ लगनेसे लोहा भी सुवर्ण बन जाता है वैसेही मूर्ख भी सज्जनोके मेलसे सुधर जाया करते हैं और भी एक संस्कृत कविने मुक्तकण्ठ होकर नीति-शास्त्रमें कहा है :—

सन्तप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनी पत्र स्थितं राजते।
स्वातौ सागर शुक्ति कुक्षि पतितं तज्जायते मौक्तिकम्
प्रायेणात्त धममध्यमो रामगुणः संवासतो जायेते।

अर्थ—जलका बिन्दुलत्ते लोहेपर पड़ते ही नष्ट हो जाता है, और वही जल-विन्दु जव कमलके पत्रसे मिलता है तव वह मोती की-सी शोभा धारण कर लेता है और जब वह जल विन्दु स्वाती नक्षत्रमे समुद्रकी (शुक्ति) सीपीमें पड़ जाता है तब साक्षात् मोती बन जाता है। इसी तरह अच्छे और वुरे गुण सत्संग और कुसंगसे ही प्राप्त होते हैं। मातृगर्भसे कोई भी प्राणी हो न बुद्धिमान उत्पन्न होता है न मूर्ख; किन्तु संगतिसे ही बुद्धिमान और कुसंगतिसे मूर्ख वन जाता है।

कुसंगति।

कुसंगतिसे मनुष्यको चोरी, जारी भङ्ग, धतूरा, मदिरा-पानादि अनेकानेक असंख्य दुर्व्यसन अपने कब्जेमें कर लेते हैं। उसका सम्पूर्ण धन अपव्ययसे तथा शारीरिक शक्ति नष्ट हो जाती है। कष्टोंका सामना करनेके कारण स्वकीय देश त्याग भी करना पड़ जाता है। अमृतमय जीवनको विषमय बना लेते हैं। देश और जातिमे कलङ्कका बीज वो जाते हैं। कुसङ्गी पुरुषको छायाहीन वृक्षकी तरह कोई भी आदर नही करता। उसे कोई अपने पास तक भी नहीं वैठाता और न उसका कोई विश्वास ही करता है। संसारमें कौन नही जानता कि कुब्जाकी कुसङ्गतिसे ही कैकेयीने इतना परम घोर अनर्थ कर डाला; जो मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीको वन गमनकी आज्ञा श्रीराजा दशरथसे दिला दी तथा कौरव राज परम अभिमानी दुर्योधनके चरित्रोंको संसारमे

कौन नहीं जानता है ? उसने महारानी द्रौपदीजीको भरीसभामें (नग्न) नंगा करना चाहा था ।

आप विचार कर सकते हैं कि उससे बढ़कर संसारमे कौन महापापी कहला सकता है, जो कि अपने वंशकी स्त्रीकी इज्जत उतारना चाहता हो, उसी दुष्टके संगसे पितामह भीष्मदेव भी राजा विराट्की गौवें छीननेके लिये चले गये थे। किसी कविने कहा भी है :—

"असतां सङ्गदोषेणसाधवोयांति विक्रियाम् ।
दुर्य्योधन-प्रसङ्गेन भीष्मो गोहरणोगतः ॥

अर्थात्—बुरेके संसर्गसे भले भी बुरे हो जाते हैं। देखो दुर्य्योधनके संगसे ही भीष्मपितामह जैसे धर्म्म-पण्डित भी विराट्की गौए छीनने चल पड़े।

पाठक गण ! यदि आप देश और धर्मकी सच्चे हृदयसे सेवा करना चाहते हो, संसारमें अपने पूवजोंकी कीर्ति पताका फहराना चाहते हों, भारत माताकी मुखकालिमाको धोना चाहते हो, भगवान्के सच्चे भक्त बनना चाहते हों, तथा मुक्तिपद प्राप्त करना चाहते हो तो अपने अमृतमय जीवनको सत्संगति द्वारा ही पवित्र कीजिये जिससे आत्मिक बल बढ़े। ऐसा करनेसे ही प्रत्येकका कल्याण हो सकता है, मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूं कि वह जगदीश्वर प्रत्येकको सत्संगति करनेकी बुद्धि प्रदान करें।

[शान्तिः ३]

विद्या ।

विद्याधनं सर्वं धन प्रधानम् ।

यों तो विद्याके अनन्त भेद हैं। यह तीनों महाशक्तियोंमें एक महाशक्ति ही है पर संक्षेपमें इसे ज्ञान ही कहना सबसे सुगम शब्द है। चाहे किसी प्रकारका ज्ञान हो यदि भ्रम रहित है तो उसे विद्या ही कहेंगे। बहुतोंका कहना है कि चाहे किसी भाषामें हो उसका रूप ज्योंका त्यों रहे उसे ही विद्या कहेंगे। दस पांच १५ होता है इसको कोई भाषावाला १६ नहीं कह सकता। ऐसे ही बिजलीके ताप, रसायनतत्व और ब्रह्म ज्ञान इत्यादिको विद्या कहेंगे। व्याकरणको भी विद्या कहकर लेते हैं। सच पूछिये तो विद्यारूप कलपुरजेके लिये भाषा मेशीन और भाषाको उचित मार्गपर चलनेवाला व्याकरण ही है। इस भारतमें अधिकतर लोग भाषा ज्ञानको ही विद्या कह कर लेते हैं। जो विद्योपजीवी थे उन्हें तो हमारे पण्डितोंने नीच कहना शुरू किया, बढ़ई लोहार, चमार, कुम्भार, सोनार इत्यादिको नीच और भीख मांगनेवाले ठग बटवारोंको उच्च मान कर विद्याकी जड़ मूल काटी।

दुःख है कि जिस देशमें अगस्त्य जैसे खनिज विद्या और योगशास्त्र तथा कूटनीतिके आचार्य्य हों, द्रोणाचार्य्य ऐसे रणपण्डित, आर्य्यभट्ट और भास्कराचार्य्य जैसे खगोल और गणितशास्त्रके पण्डित, शुक्राचार्य्य और विष्णु गुप्त (चाणक्य)

जैसे कूटनीतिका पण्डित, चरक, बागतट्ट और भावमिश्र इत्यादि जैसे रसायन, तन्त्रशास्त्र (रसायन शास्त्र) अग्निपुराण (उत्तापशास्त्र,) विद्युजिह्वा इत्यादि विद्युत शास्त्र, हस्तरेखा, ज्योतिशास्त्र, यन्त्रशास्त्र, सङ्गीतशास्त्र, इत्यादि सहस्रों शास्त्र पड़े हुए हैं उसी देशके लोग हाय नौकरी ! हाय नौकरी ! की गगनभेदी आवाज.लगा रहे है। यह केवल भाषापर ही लट्टू होनेका फल है।

इसका परिणाम भी खूब ही भयङ्कर हुआ। १५) पर पास किये हुये लोगोकी हजारो दरखास्तें आजाती हैं, पर २५) ३०) पर भी एक किसी अच्छे बढ़ई लोहार सोनार इत्यादिकी एक भी दरखास्त नही देखनेमे आती। एक ग्रेजुएट या शास्त्री परीक्षोतीर्ण पण्डित ३०, ४० रुपये तनखाहमें हजारो गुजर करते देख पडते हैं। पर एक लोहार मिस्त्री या बढ़ई मिस्त्री १५०) तनखाह पर भी नाक भौं सिकोड़ते दिखाई देते हैं जिन्हे पूरा हस्ताक्षर भी रहीं आता। यही विद्वान और भाषाज्ञानीमे प्रत्यक्ष भेद हैं। मजा यह हे कि हम अक्षराभ्यासी या भावाभ्यासी इन विद्वानोको नीच कहनेमे जराभी शरमाते नहीं है। इन्हीकी भारतमे इज्जत होनी चाहती थी पर हवा ही उलटी बह चली है। कहां तो सूतजीकी प्रतिष्ठा इतनी थी कि वह सबसे ऊंचे आसन पर बैठते हैं और शौनकादि बड़े बड़े महर्षिगण नीचे बैठते हैं और कहां आज सूत सन्तान (बढ़ई लोहारों) की यह दुर्गति। कूट नीतिके परम पंडित देवर्षि नारद दासी पुत्र थे। वशिष्ठजी, उर्वशी पुत्र थे,

इतिहास और ज्ञान विज्ञानके आचार्य्य वेद व्यासजी इत्यादि पुछल्ले धारी जातिमें नहीं थे सबका आदर भारतने हृदयसे किया प्रेमसे किया पर आजकलके धूर्त, निकम्मे, ढोंगी अपनी धाक रखनेके लिये सबको नीचा करना शुरू किया। जब भारत स्वतंत्र था, विद्याका आदर था। उस समय भारतका शिर भी ऊंचा था, यश भी सर्वव्यापिनी थी। हमारे मनुमहाराज बडे गर्वसे कह बैठे कि—

एतद्देश प्रसूतस्य शकासाजग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षरेन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

अर्थात् इसी प्रदेशके जन्में हुए ब्राह्मणोंसे जगतमे जिसकी इच्छा हो आकर अपना चरित्र सीख जाय।

हालमें राजा भोजने आज्ञा दी थी कि—

ब्राह्मणश्चेद् भवेन्मूर्खः सपुराद्वहिरस्तुमे।
कुम्भकारोऽपि चेद्विद्वान् सपुरो मेऽवतिष्ठत॥

अर्थात् ब्राह्मण भी यदि मूर्ख हो तो हमारे नगरसे निकल जाय और कुम्भार भी यदि विद्वान् है (हुनर जानता हैं) तो आवे उसका मैं आदर करनेको तयार हू। एक जगह पूजा पद्धतिमें मैंने देखा। उसमे लिखा था—

"विश्वकर्म्मन्निहागच्छ तुलाकोटिमलं कुरु"

अर्थात्—हे विश्वकर्म्मन् आप यहां आइये। इस तुलाकोटि तराजूकी डंडी) को सुशोभित कीजिये।

हमने आध्यात्मिक विद्या पर तो कलम तोड़ दी। संसारिक विद्याको लात मारी। यह नहीं समझा कि चारों वर्गोंमे अर्थ, धर्म्म, काम, मोक्ष चारों हैं। जहां धर्म्म हैं वहां अर्थ भी है। जहां मोक्ष है वहां काम भी है। और धर्म्म एवं मोक्षकी परिभाषा भी तो केवल परलौकिक ही नहीं है।

"यतोभ्युदयनिःश्रेयसः सिद्धिः सधर्म्मः।"
"चोदना लक्षणार्थो धर्म्मः।"

इत्यादि। इन लक्षणोंका अर्थ भी तो केवल पारलौकिक नही। ऐहलौकिक भी है। फिर कहनेवालोंका क्या अधिकार है कि वे मनमानो बके।

तुलसीदासजी भो लिखते हैं—

उत्तम विद्या लीजिये यदपि नीच पै होय।
पड़ो अपावन ठौरमें कंचन तजत न कोय ॥१॥
मात पिता हैं शत्रु सम सुत न पढ़ावे जौन।
राजहंस मधि बकसरिस सभा न शोभत तौन ॥२॥
रूप भयो यौवन भयो कुलहुंमें अनुकूल।
विन विद्याके जानिये गन्धहीन ज्यों फूल ॥ ३ ॥

विन औसर हूं देतफल कामधेनु समनित्त।
मातासी उपदेशमें विद्या संचित वित्त ॥ ४ ॥

पाठको, विद्या बड़ी अपरंपार है। सर्वत्र विद्याकी महिमा वर्णित है। जो विद्यासे रहित मनुष्य हैं वह विद्वन्मण्डलमें इस तरह देख पड़ता हैं जैसे राजहंसोमे वगुला। इसलिये सर्वदा विद्याका ध्यान रखो। इसे प्राप्त करनेको सर्वदा उत्साह शक्ति धारण करो। नीचके पास भी यदि कोई श्रेष्ठगुण हैं तो उसे ग्रहण करनेका प्रयत्न करो।

विद्या शस्त्रस्य शास्त्रस्य द्वेविद्ये प्रतिपत्तये।
आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीया द्वियते सदा ॥

साधारणतया विद्याके २भेद हैं १ शास्त्र विद्या २ शस्त्र विद्या। परन्तु शास्त्र विद्या सर्वदा मनुष्य सीख-सकता हैं। शस्त्र विद्या युवावस्थामें ही सीखी जाती है अन्यदा नहीं।

और भी एक वेदकी क्रिया प्रमाण रूपसे लिखी जाती है—

विद्याहैगा ब्राह्मण माजगाम
गोपायमा शेवधीष्ठेऽहमस्मि।
असूयकायानृजवेऽयताय न मा
ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम् ॥

अर्थ—

विद्या, ब्राह्मणोंसे प्रार्थना करती है, कि मेरी यत्नसे रक्षाकरो। बड़ी मिहनतसे मेरी रक्षा करो। मैं सबको सुख देनेवाली हूं। निन्दक कुटिल मिथ्यावादी (असंयत) जो जितेन्द्रिय न हो ऐसे मनुष्योंको मुझे प्रदान मत करना, अधिकारीको ही दान करना। ऐसा करनेसे मैं बलवती शक्तिशालिनी होकर सम्पूर्ण प्राणियोके मनोरथोको सफल करूंगी। अतः—

पाठको! विद्या अमूल्य पदार्थ है तथा मनुष्योके जीवनको अमृतमय बना देती हैं। इसलिये सर्वदा प्रत्येकको उचित है। जिन नियमोंसे भी विद्या प्राप्त हो सके उन्हीं नियमोका उन्हीं उपायोंका आश्रय लें।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कितना विद्याव्यसनी थे। विद्याके प्रभावसे ही ईश्वर चन्द्रने 'विद्यासागर' की उपाधि प्राप्त की थी, तथा अपने नामको चिरस्थायी कर दिया। विद्याके प्रभावसे आज हम विद्यासागरका दृष्टान्त औरोंके लिये प्रदर्शित कर देते हैं।

विद्याके प्रभावसे प्राणी ऐहिक तथा आगन्तुक पारलौकिक सुखोंको भोग सकता है।

नीति कहती हैं कि:—

विद्या ददाति विनयं, विनया द्याति पात्रताम्।
पात्रत्वा द्धनमाप्नोति, धनाद्धर्मम् ततः सुखम्॥

विद्या मुपार्जयेद्बाले, धनं दारांश्च यौवने।
प्रौढ़े धर्म्माणि कार्य्याणि, चतुर्थे प्रव्रजेत्सुधीः॥

विद्या प्रत्येकसे आदमी नम्र हो जाता है तथा बड़ा योग्य बन जाता है।

इसलिये उचित है कि विद्याको प्रत्येक बाल्यावस्थामे ही प्राप्त करें।

विद्या विमुख प्राणियोको धर्माधर्मका ज्ञान नहीं होता। धर्माधर्मका ज्ञान न होनेसे ही उनके सामने स्वकर्मानुसार अनेकानेक आपत्तियां उपस्थित हो जाती हैं। इसलिये यदि स्वजीवनको अमृतमय बना कर इस संसारमे अपने यशकी पताका फहराना चाहते हो तो तन, मन, और धनसे विद्याध्ययनमें निरत होनेका प्रयत्न करो और ईश्वरसे प्रार्थना करो कि हमे इस कार्य्यमें सफलता देवें।

॥ इति ॥

❊ सातवां सोपान ❊
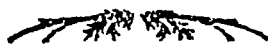
स्वाध्याय ।

स्वाध्यायोऽधेतव्यः ।

वेद पढ़ो पढ़ाओ—

हम हिन्दुओने वेदको केवल धार्म्मिक या पारलौकिक ही पुस्तक समझ रखा है। परन्तु यह वात नही है—"वेद सर्व-प्रतिष्ठितम्" अर्थात् वेदमे सब कुछ है। आप ज्ञान विज्ञान, राजनैतिक, सामाजि या धार्म्मिक जिस प्रकारकी उन्नति मार्ग ढूढें उसमें पावेंगे। हां, इतना अवश्य है कि उन वेदोमें ऊपर लिखी वातें सूत्र रूपसे हैं। खुद चारों वेदोमें ही कर्म्म, उपासना, ज्ञान और विज्ञान काण्ड हैं। इसकी सबसे अधिक विशेषता यह है कि इसमें किसो भो सम्प्रदायको वात नहीं है वल्कि मानव धर्म्म ही इसमें पाया जाता है।

हमारे पूज्य ब्राह्मणोंने अव इसका पठन पाठन प्रायः छोड़ सा दिया है। हमने वड़े वड़े संस्कृतके प्रकांड विद्वानोंको देखा वे भी वेदके लिये कोरे हो रहे। काशीके वड़े वड़े शास्त्रियोंसे पूछिये वङ्गालके वड़े वाचस्पतिजीसे पूछिये वे भी वेदसे कोरे ही मिलेगे। वे वेदाङ्ग या शास्त्रोके पूर्ण पंडित हो सकते

हैं। वे व्याकरण, न्याय मीमांसा, धर्म्मशास्त्र इत्यादिमें महीनो शास्त्रार्थ कर सकते हैं परिणाम फिर भी वेद उनके सामने अन्धकारमय ही देखाई देता है।

दुःख है कि लोग संस्कृत साहित्यकी उन्नतिके लिये हाय! हत्या करते दीख पड़ते हैं पर वेदके प्रचार या वैदिक भाषाके प्रचारकेलिये कोई भी यत्न पंडित मंडली नही करती। क्या इस लिये यत्न नही करती कि इस कार्य्यको आर्य्यसमाजने हाथमे लिया है? भगवन्! आपकी धार्मिक ग्रन्थोके अध्ययनसे ही रोटी चलती है, आप संस्कृतकी उन्नतिके लिये शख फूंकते फिरते हैं तो आपका कर्तव्य नहीं था कि सभी जगह वेदोका पठन पाठन अनिवार्य कर देते, ब्राह्मण सभा या और संस्थाओ में वेद अनिवार्य कर देते हैं? यह तो आपसे होता ह। नही तो एक परिभाषा या फक्किका परम हीनो विद्यार्थियोको परिष्कार रटवाते है। इस परिष्कारको रट रटवाकर ब्राह्मण देवता क्या करेंगे? शिर मारेंगे कि झख मारेंगे? मुझे तो लक्षणोसे मालूम होता है कि ब्राह्मणोकी मूर्खतासे ही संस्कृतसाहित्यका लोप होगा।

आज भी दो चार ब्राह्मण यदि कर्म, विज्ञान, ज्ञान, रसायन शास्त्रपर भिड़ जाते तो स्वाध्यायका पूरा फल भी पा जाते पर यहां ते वेदोंके तत्वोको मानना तो अलग रहा उनका अध्ययन ी छूटसा गया हैं।

वेदमें वायु, अग्नि, वरुण और सूर्य्य इत्यादि प्रकृित तत्वोंका वर्णन खूब जोरोंसे आया है। इसके अतिरिक्त ईश्वरीय स्तुति राष्ट्र निर्माण, यन्त्र-निर्माण, कला-कौशल इत्यादि प्राणियोंकी भलाईकी सभी बातें दी गई हैं। इनका और इनके अनुसार चलने वाले शास्त्र, अङ्ग उपाङ्ग और धर्म्म-शास्त्र इत्यादि सभी प्रकारके ग्रन्थोंका अध्ययनको स्वाध्याय कहते हैं।

बड़े दुःखकी बात है कि वेदोंको लोगोंने मज़हबी किताब कहने लगे हैं। उनके कहनेका मतलब यह है कि जैसे कुरान या बाइबल ग्रन्थ हैं वैसे ही वेद भी हैं। इनके साथ वेदको भी घसीटना सोनेको पित्तलसे मिलाना है। जिसमें सभी बातें भरी हैं। जिसमें पार्लियामेण्ट या प्रजातन्त्र राज्य चलानेकी विधि है, जिसमें खगोल, भूगोल, खनिज, इञ्जिनियरिंग इत्यादि सभी बातें भरा है, जिसमें एकेश्वर वादिताकी सहनत्रों शक्तियां हैं उनका ओसन काफिरोंको मार डालनेका आदेश देनेवाले, हुरें और गिलवोंको बिहिश्तमें मिलानेवाले ग्रन्थोंसे या रोटीके लिये स्तुति करनेवाले बछड़ोंके मांसके आदेश देनेवालोंमें रख दिया जाय यह आश्चर्य ही है।

सच पूछिये तो यह कलंक उन्हीं लोगोंके शिरपर है जिन्होंने वेदोंकी पूजाकी सामग्री मान ली और जन साधारणमें उन वेदों काप्रचार भी वैसा ही किया कि वेदकी ऋचा सुन लेनेसे ही मुक्ती हो जाती है। बस एक पण्डितजो धर पकड़ कर भाड़ेपर-

मंगाये गये जिन्होंने कुछ वेदकी ऋचायें कंठस्थ कर ली है। उन्हींके मुखमण्डलसे वेद ध्वनि हुई कि हमारे हिन्दुओंकी सात पीढ़ी ऊपर और नीचेकी मुक्ति पागयी। फल यह हुआ कि ये वेद कुछ दक्षिणा वसूल करने वालोंके वाकसमे जुगानेकी वस्तु रह गयी नहीं तो जर्म्मनी या अन्य देशोंके पुस्तकालयकी शोभा बढ़ाने वस्तु रह गया। विद्वानोंने शारीरिक, मानसिक, अध्यामिक उन्नतिके सविन समझकर नहीं अपनाया। इसका अनादर यहां तक बढ़ा और इन्हें धूलमें मिला देनेको विदेशी लोगोंने ऐसी वेरहमीसे आवाज उठायी की हमारे देशके लाढ़िले, हमारी ही आर्य्य भूमिकी एक सन्तान मृत रमेशचन्द्रदत्तने गंडेरियोंके गीत वेदोंको लिख दिया। हम उस व्यक्तिका दोष नहीं देते। उस बेचारेने तो अंगरेजीकी लिखी पुस्तक उठाई और वही भाव अपने हृदयमें उतारा। वेदोंको पढ़ा थोड़ या पढ़नेकी कोशिश की?

मेरे ऊपरके अवतरण लिखनेका भाव यही है कि ऊपर लिखी रीतिसे वेदोंका स्वाध्याय करना स्वाध्याय नहीं कहाता। तोते मैनेकी तरह रट जानेको ही स्वाध्याय नहीं कहते बल्कि श्रवण, मनन, निदिध्यान तीनोंको ही स्वाध्याय कहते हैं—यथा अर्थके साथ वेद पढ़े, उनका मनन किया कि इन ऋचाओंका क्या मतलब है, सोचा विचारा और अन्तमें उसके मोताबिक करनेका विचार किया। इसीको स्वाध्याय करते हैं। इसीकी आवश्यकता भी है।

स्वाध्यय हमारे धर्मके अन्तर्गतकी चीज़ है। हमारे हिन्दू जैसे

और धर्मकार्योंको नित्यका कर्तव्य समझते है। जैसे "मातृ पितृ कार्य्याभ्यांम मा प्रमदितव्य" (मातृ पीतृ कार्य्यको नत भूलो) वैसे ही 'स्वध्या यान्मा प्रयतिव्यम्' अथात् स्वाध्यायको भी मत भूलो प्रतिदिनके अवश्य कार्य्यमें रखो। यह भा लिखा।

दुःख है कि चौपड सतरञ्जकी गोटियां मारनेको हमारे बाबुओ या लाला साहबको समय मिल जाता है। गप्पे हांकने के लिये समय मिल जाता है। लड़ाई करके कचहरियाको हवा खानेके लिये समय मिल जाता है पर जिससे मानसकी पुष्टि हो ज्ञानकी ज्योति बढ़े उस स्वाध्यायसे मुख मोड़ लेते हैं। यदि कुछ पढ़ गये हो या बारलाब्रेरीमें पहुच गये तो हम समझते हैं कि सातव आसमान पर जा बिराजे। अब हमे कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं। महाशयजी, अभी आपको बहुत कुछ करना बाकी है। आइये, ईश्वरके आदेश वेद, बड़े ऋषि महर्षि और विचार-शील पुरुषोंके दिमागसे निकली हूई बातें पढ़े और विचारें। आपकी आत्मा पवित्र हो जायगी, चरित्र सुधर जायगा। ठंढी आग जग जायगी और आपका कल्यान्तर हो जायगा। देर न कीजिये यदि न जी जगता हो तो ललित पुस्तकोंसे ही शुरू कर डालिये फिर स्वाध्यायका भी श्रीगणेश कर डालियेगा।

ध्यान रहे कि स्वाध्यायका अर्थ केवल वेद ही पढ़ना नहीं हैं। बल्कि धार्म्मिक सामाजिक राजनैतिक किसी कार्य्यमें प्रकाश डालनेवाली पुस्तकोंका अध्ययन करना स्वाध्यायके भीतर आ

सकता है। टालस्टायकी पुस्तकें पढ़कर लोकमान्य तिलक और महात्मा गान्धीने देश और धर्मकी मर्य्यादा बढाई थी। लाला लाजपतजीने ही केवल वेद नहीं पढ़े थे। मैं उन पंडितोंसे अनुरोध करूंगा कि कूपमंडूक न बने। उनकी संस्कृत पुस्तकोंके अलावे भी पुस्तकें संसारमे आ गई हैं। ईश्वर अपना भाव महात्माओंके द्वारा ही संसारमे उतारता हैं। इसीलिये वेद ग्रष्टा एक ही ऋषि नहीं हुए हैं। शाखायें भीवेदोंकी बहुत हुई हैं। वहा जिस देशके अनुसार वैसे ही मन्त्रोका उच्चारण किया। फिर शाखाओको सृष्टि हुई उपनिषद्ने भी कह डाला कि "अनन्ता वैवेदाः" अर्थात् वेद अनन्त है। यह तो और लोगोको कमजोरी हैं कि किसो ईश्व-रीय आदेशको परिछिन्न कर डाले। हमारे ऋषियोंमे यही उदारता है यही महत्व है। अनन्तावेदा. कहने वालेका भो यही भाव है कि जब धर्मको हानि होगी तव तव ईश्वरीय अ देश नया रूप धारण कर ससारमे उतर आवेगा।

वेदकी भाषा ईश्वरीय भाषा नहीं है। आज भो कोई वेदिक भाषाका पण्डित अपना मनमानी गढन्त वैदिक भाषामे 'लिखकर ऋचाका रूप दे सकता है पर वह ईश्वरीय ज्ञान नही कहला सकता। वह तो आत्मपुरुषोंके द्वारा हो यदि संसारमे आवे तो उसे वेदका रूप दे सकते हैं। हम मनुष्य भो उसीको अपना दूत बना दते हैं कि जो हमारे भावको भली भाति प्रकाशित कर सकें।

"स्त्री शूद्रौ ना धीयेताम् ।" दुःख है कि किसीने यह कमजोर रचना भी कर डाली। तब तो हमारी अपाला इत्यादि स्त्रियोकी ऋचायोंपर भी पानी फेर दिया। सबसे दुःख तो इस बातका है कि गोमांसके खानेवाले हैट बूट धारी अङ्गरेजोको पण्डितजी महाराज काशीमें बैठकर वेदकी ऋचाये पढ़ावे पर हमारे भाई शूद्र यदि वेदकी ऋचाये सुनले तो उनके कानोमे शीशा गलाकर देदे। मेरी तो सम्मति यह है कि पहले उन पण्डितोकोके कानोमें पहले शीशा पिलादेना चाहिये जिन्होंने उन महाशूद्रोंको वेदकी ऋचाये पढ़ाई या अर्थ बताया।

महाशय ढकोशलावाजी छोड़िये। गायत्री ही का अर्थ लीजिये गायत्रीका अर्थ है गाने वाली। पहले तो किसी शक्तिदेवीने ही इस ऋचाको गाया होगा।

अच्छा यह तो बताइये कि गायत्रीकेद्रष्टा यदि विश्वामित्रकोही यदि गायत्री मन्त्रके द्रष्टा मानते हो तो वह भी तो ब्राह्मण नही थे। तव तो आपके गुरु मन्त्र देनेवाले क्षत्रिय थे? फिर आप क्यो केवल ब्राह्मणोकी ही बपौती सम्पत्ति मानते हो? इसलिये जब अनेक ऋषि जो मन्त्र द्रष्टा थे उनमे बहुतके वर्णका कुछ ठिकाना नहीं था तो कैसे आपने कुछ वर्णवालेहीके लिये वेद स्वतन्त्र रखा? कुछ समझमें नहीं आता कि क्यो "स्त्रा शूद्रौ नाधीयेताम् ।" कहा गया।

उलटी समझ ।

वेद या उसका अङ्ग उपाङ्ग । सबकी कुछ मतलबसे रचना हुई थी, केवल शास्त्रार्थ करनेके लिये ही नहीं। मान लीजिये मणि, मन्त्र औषधि। इनका महत्व वैशेषिक शास्मे समझाया गया। टीकाकार या भाष्यकारने तो उस समयके प्रचलित शब्दोंका ही प्रयोग किया पर हमने आज कलके अर्थमें ही उन शब्दोंको समझा। अर्थात् मणिको हीरा, पन्ना इत्यादि पर उसका उस समयमें किस अर्थ प्रयोग था यह नहीं समझा या समझाया।

मान लीजिये "रेडियम्" एक धातु है। बस यहां ही तक हम जानते हैं। बल्कि प्रायः पंडितोंको यह भी खबर न होगी कि ऐसी कोई वस्तु प्रत्यक्ष हुई हैं जिसकी रोशनी बीस बीस माइल तक जाती है, जिसके द्वारा हम घर बैठे वलायत, अमेरिका इत्यादि देशोंकी बाते या गाना बजाना सुन सकते हैं, जिसकी शक्तिसे शरीरके भीतरी एक एक नस भी देख सकते हैं। ऐसे पदार्थको किसी पडितने मणि नहीं बताया बल्कि खुद भी नही समझा। अब आप ही बतावे कि जिसका दाम ६० हजार रुपये तोला होय और जिसकी ऐसी अमोघ शक्ति हो उसको मणिमे न ग्रहण करें या जाने भी नहीं, संस्कृत कालिजोंमें जिसकी चर्चा भी नही, तो ऐसे पंडितोसे कौन पढ़ने जाय?

हमने पाश्चात्य लोगोको म्लेक्छ कहकर छोड़ दिया। उनके

मुखसे उच्चरित्र बातोंको हेय, तुच्छ समझा तो आधुनिक लोगोंने भी आपके शास्त्रोंको हेय समझा। बस इलिये संस्कृत पुस्तकोंको धर्म ग्रन्थ या आध्यात्मिक ग्रन्थ समझकर लोगोंने छोड़ दिया। वह मृत भाषामे गिने जाने लगी फिर उसका अध्ययन हो रोटीको भूखे हुए जमानेमें कौन करने गया। यदि हम मणियोको समझते, उनकी खोजमें लगते तो कोई कारण नहीं था कि लोग उमड़े दिलसे उन ग्रन्थोकों पढ़ते। इन मणियोंकी खोज तो पश्चिमी विद्वानोंने की। और छः छः माइल गहरे समुद्रकी तहमे पड़े हुए पदार्थोंको एक शीशेके द्वारा देखना शुरू किया और हम मणिमन्त्र औषधिके शब्द ही रट रट कर खूब शास्त्रार्थ किया।

न्याय शास्त्रको हमारे पंढितोंने इतना जटिल बना दिया कि पढ़नेवालेके सात हर्ष भी नहीं समझ सकत कि क्यों अवच्छेद का वच्छिन्न कहकर पंडितजी हमारी खोपडी खाते हैं। इसीलिये कि अब केवल शब्दाडम्बर या वितंडावाद ही मात्र संस्कृत पंडितोंने समझा और समझाया। इसीलिये संस्कृत पुस्तकोंके अध्ययनसे लोग दूर भागने लगे।

न्याय शास्त्र तो प्रमाण वादो है ? तो उसको पण्डितोंने नव्य शास्त्र समझा कर जटिल क्यों बनाया ? क्या इसलिये कि ब्राह्मण छोड़कर और कोई न पढ़ने पावे ? स्वार्थके पुतले, तुमने कितना अनर्थ कर डाला। तुमने ही माता संस्कृत भाषाको मार डाला और लोग इसे मृत भाषा कहने लये। इसी परमाणु वादको लेकर

अमेरिकनोंने कागजको लोहा बना दिया। वे जितने परमाणु लोहेमें कसे रहते हैं उतने ही कागजमे प्रेस कर करके कस डाला। लोहा तैयार हो गया। और हम अवच्छेदका वच्छिन्नके जालमें फंसे भीख मांगते रहे। खयाल रहे, प्राचीन ऋषियोंने हमे शास्त्रार्थके दल दलमें नहीं फंसाया पल्कि आधुनिक लोगोंने ही फ़ंसाकर हमे लौर हमारे धर्म्म ग्रन्थोंको मार डाला।

तन्त्र शास्त्रको ही लीजिये जो सबसेउ पयोगी था वह सबसे बुरे व्यवहारमें लाये जाने लगा। कहां तो यह रसायन शास्त्र था और कहां शरावी और कवाबी लोगोने अपना अड्डा बना लिया। जो किन किन वस्तुओंसे क्या क्या शक्ति उत्पन्न हो जाती इस अर्थमे समझा जाता था अब वहीं शराबसे शक्ति देवीकी अरा-धनाका साधन समझा गया। लोगोंकी घृणा हो गई। दुष्टोंने मनमानी बातें मिला मिला कर तन्त्र शास्त्रका भी लगा घोट डाला।

विद्युज्जिह्वा नामका एक ग्रन्थ तन्त्र शास्त्रका है। उसमे एक श्लोक है।

विद्युत्तु त्रिविधा प्रोक्ता संघर्षण समुद्भवा,
अयःकान्त प्रसूताच्च तथा संसर्ग सम्भवा॥

यह भी श्लोक तन्त्र शास्त्रका ही है। आप इसे क्या कहते हैं। बिजलीकी उत्पत्ति बतानेवाला यह श्लोक नहीं है? अर्थ भी सुन लीजिये—तीन प्रकारकी बिजली होती है—एक तो घिसनेसे

दूसरी चुम्बकसे तीसरी अनेक वस्तुओंको इकठ्ठी करनेसे बिजली पैदा होती है। अब इसे शराबी कबाबीका शास्त्र कौन कह सकता है?

स्वध्याय किसे कहते हैं।

यह भी सुनिये, मेरी तुच्छ बुद्धिमें यही आता है कि सु० अध्याय अर्थात् बढ़ियात रहसे रढ़ना पढ़ाना। सु० अर्थात् भली भांति अध्याय माने मन लगाकर याद करना तो आज हमे विदेशोंका मुंह एक सूईके लिये भी न देखना पड़ता।

अग्नि पुराणका उत्ताप (इञ्जिनियरिंङ) वायव्य पुराणका आकाश यान (हवाई जहाज) इत्यादिको तो हमने भाड़में झोंक दिया पर लगे गप्पे हांकने। इसलिये लोगोंकी इन ग्रन्थोंपरसे भी रुचि हटा। हां, अभी तक वैद्यक और ज्योतिःशास्त्र बचे हुए हैं। इसलिये इनका अध्ययन भी धीरे धीरे बढ़ रहा है।

खगोल, भूगोल, श्रीमद्भागवतका, रणविद्या और धर्म, राज तथा समाजनीति महाभारत और रामायणकी, जलीय विज्ञान पद्मपुराणका इत्यादि ग्रन्थोंका अध्ययन हमने परलोक बनानेके लिये ही करना शुरू किया। इसलिये अब यदि संस्कृत शास्त्र, पुराण इतिहास, नाराच, वेद, वेदाङ्ग जो कुछ आप पढ़े उन्हें पढ़ना और मनन करना भी चाहिये।

स्त्री शिक्षा।

स्वाध्यायमें हमारा एक प्रधान अङ्गही कोरा रह गया है। हमारी देवियोका अध्ययन चूल्हा चक्कीके पास तकही रह गया। जिनकी गोदमें भारतके भावी भाग्य विधाता बच्चा बैठा रहता, जिनके गर्भसे श्रीकृष्ण और श्रीरामजी तथा दानवीर हरिश्चन्द्र, युद्ध वीर भीष्म पितामह और अर्जुन एवं भीम युधिरादि पैदा होते हैं, जो धर्म्म समाज तथा देशको जगानेके लिये अटूट साधन हैं, जिनके पीठ ठोक देनेसे ही वीर बालक शत्रुओको रणक्षेत्रमे रौंदता हुआ खेलता है, जिनकी युद्ध विद्यासे शिवाजी जैसे अस-हाय और अत्याचार पीड़ित भारतका अद्धारकर्ता हो सकें, उन्हे केवल बच्चे जननेकी मेशीन और चूल्हा फूंकनेके लिये भाथी समझा जाय यह समझमें नहीं आता।

कहां तो देवहूती जैसी माता अपने प्रिय पुत्र कपिलदेवजीसे शांख्य शास्त्रका प्रश्न पूछे और कहां हमारी देबियां अपने बच्चोको विषय वासनाके पुतले बनावें। कहां तो भगवती सीतादेवी अपने लड़के लवकुशको युद्ध विद्या सिखावें और कहां हमारी मातायें अपने बच्चोंको हौआ और कुत्ते बिल्लीसे डरवाना सिखावें। खयाल रहे भगवान् रामचन्द्रजीके दोनों लड़के लव और कुशको वालमकी जी महाराजने तो गानो सिखाया था और भगवती जानकीने वह रण विद्या सिखायी कि राजसी ठाटसे कालजोंमें पढनेवाले और

भारत माता और लालाजी,

हजारोंको संख्याकी फौज रखनेवाले लक्ष्मणजीके पुत्र चन्द्रकेतुके छक्के छुडा दिये। मदालसाने अपने बच्चेको पलनेपर झुलाती हुई कहा था कि "शुद्धोऽसिबुद्धोऽसि निरंजनोऽसि संसार माया परिवर्जितोऽसि।" अर्थात् बेटा तू शुद्ध है। तेरेमें कोई दोष नहीं है। तू बुद्ध है-सब कुछ जाननेवाले अचूक ज्ञान रखनेवाले हो। तु निरंजन हो—बेदाग हो और तेरे ऊपर संसारकी माया (Hipocricy) चालबाजी नहीं लग सकती और कहां अब बच्चोंके सामने ही पशुओंकी तरह विषय वासनाका नजारा दिखाया जाता है।

घोर वनमें मैत्रेयी अकेली अगस्त्य इत्यादि महर्षियोंके पास वेदान्त पढ़ने जा रही है। किसीने पूछा कि कहां जा रही हो तो उसने जवाब दिया कि—

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे भूयां-
सउद्गीथविदोवसन्ति।
तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां
वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्य्यटामि॥

अर्थात् इस वनकी एक तरफ अगस्त्य जैसे बड़े बड़े वेद वेदान्तके जाननेवाले विद्वान रहते हैं। उनसे वेदान्त शास्त्र पढ़नेके लिये श्रीवाल्मीकि ऋषिके पाससे जा रही हूं। कहां तो पढ़नेके

लिये बनमें अकेली जाती हुई एक नवजवान कन्याको कुछ भी संकोच नही मालूम होता और कहा तीन हाथकी घूंघट लटकाई हुई बहुजी हमारे घरके कोनेमे वैठी हुई झख मारती है।

दूर देशसे एक प्रकाड विद्वान् श्रीशङ्कराचार्य्यजी महाराज विहारके मिथिला प्रदेशमे मंडन मिश्रसे स्त्रार्थ करने आये हैं। स्त्रार्थ करेंगे तो पर मध्यस्थ कौन होगा। चारों ओर नजर घुमाई गई। ऐसे प्रकाड दोनो विद्वानोका मध्यस्थ कौन होगा इसका विचार होने लगा। दूर जानेकी आवश्यकता नही पड़ी। घरमेही इन विद्वानोके शास्त्रका निर्णय करनेवाली मिल गयी। वह मंडन मिश्रकी स्त्री सरस्वती देवी थी। शास्त्रार्थमे प्रतिज्ञा हुई कि जो हार जाय अपना आश्रम वदल दे। अर्थात् मंडन मिश्र हार जाय तो सन्यासी हो जायं और शंकराचार्य्य हार जायं तो गृहस्थ हो जायं। लगा शास्त्रार्थ होने। २१ दिनोतक शास्त्रार्थ होता रहा। संध्या समयके वाद सरस्वती देवी कहती थी कि उठिये पति देव रोटी खाइये और उठिये यतिदेव रोटी खाइये। २१ वें दिन मंडन मिश्र शंकराचार्य्यसे हार गये। अन्तमे सरस्वती देवीने निष्पक्ष भावसे कहा कि—“उठिये दोनो यतिदेव रोटी खाइये। मण्डन मिश्र की हार हो गयी। यह समझकर शंकर भगवान्ने मंडन मिश्रका शिरमुंड वा कर सन्यासी वनाना चाहा। पर सरस्वती देवीने कहा कि आप महाराजने अभी हम गृहस्थोका आधा अङ्ग जीता है आधा अङ्ग तो अभी मैं बाकी हूं। मुझे भी शास्त्रार्थमें जीत लीजिये

तव हम दोनोंको सन्यासिन और संन्यासी वनाइयेगा। सरस्वती देवी शङ्कराचार्य्यसे शास्त्रार्थ करनेको भिड़ गई। वह जानती थी कि शृंगार रस शङ्कराचार्य्य नहीं जानते क्योंकि यह वालकालसे ही सन्यासी हो चुके हैं। अन्तमे शंकराचार्य्यको हराया। कहने का वतात्पर्य्य यह है कि जो स्त्री शंकराचार्य्यको भी अपने विद्या-वलसे हरा सकती है वह क्या मूर्खा भी हो सकती है यह स्वप्नमे भी उस समयके लोगोंने विचार नही किया था। पर समयने पलटा खाया। अव यदि हमारे भारतीयोंके घरमें ढूढा जाय तो सैकड़े ही नही हजारमें भी एक दो सच्ची शिक्षा पाई हुई नजर आवेगी। दुःख तो इस वातका है कि जो कुछ उच्च शिक्षा पाती भी हैं वह अंगरेजीमें। सम्भव है कि अंगरेजीमें शिक्षा पानेसे वे कुछ स्वाधीनताकी झलक देख लेती हैं पर मुझको तो अभीतक अंधकार ही अंधकार देख पड़ता है। जिसपथसे भ्रष्ट होकर पुरुष गण चिन्तामें पड़े हैं उसी पथकी अनुगामिनी हमारी देवियां भी हो रही है।

परमेवश्वर करे कि वे खूव पढ़ें लिखें खूव स्वाधीन हों पर अपनी जातीयता खोकर अपना रूप खोकर अपना सर्वस्व खोकर यदि वे विदुषी हुईं भी तो उनसे देशको क्या लाभ, धर्म्मकी वृद्धि कौन सी होगी? इसलिये यदि वे स्वाध्याय करना चाहें तो वीर चरितका, गणित और रसायन शास्त्र, कलाकौशल, स्त्री चिकित्सा वालचिकित्सा इन्हीं कईएक अंशोका विशेष अध्ययन करे तो

अच्छा है। जिससे वे अपना तथा अपनी सन्तानोंका हृदय बना सकें पुष्टकर पदार्थोंका सेवन कर और करा सकें।

यह मैं मानता हूं कि वे कुछ नौकरियां पा जायेंगी, उन्हें कौन्सिल तथा हाईकोर्टमें मेम्बरी या वकालत वे करने लग जायंगी तो क्या वे इन बातोंसे सीता सावित्री, गार्गी मैत्रेयी बन सकती हैं? खयाल रहे! भारतवर्षमें सभी उत्तम कार्य्योंमे स्त्रियोंकी इज्जत पुरुषोंसे इसलिये नही बढ़ाई गयी हैं कि वे नौकरिया करती हैं या वकालत करती हैं किन्तु इसलिये हमने उनको शक्तिमाना, धी, ह्री, श्री (बुद्धि, लज्जा और लक्ष्मी) माना कि उन्हीकी सच्ची शक्तिसे राष्ट्रकी शक्ति बढ़ती है।

अर्थात् इस असार संसारमें यदि कोई तत्व वस्तु है तो समझमे आ जायगा कि स्त्रीही सबसे उत्तम रत्न है क्योंकि उन्हींके गर्भसे कालिदास, रणजीतसिंह, गुरुगोविन्दसिंह, बन्दा बैरागी, राणाप्रताप इत्यादि वीरोंका जन्म है। इसीलिये उनकी इज्जत हैं उनका गौरव है। इसीलिये इनके हृदयसे निकला हुआ रत्न देशका रत्न होगा। ऐसे तो मुर्गियां भी एक एक बार २१, २१ बच्चे जननेके लिये अंडे देती हैं, सूअर एक एकबार सोलह सोलह बच्चे देती हैं। इससे क्या उनका महत्व हो गया?

अर्थात् एक ही पुत्र सिंहसे सिंहिनी सुखको नींद लेती है पर गदहीके दश दश लड़के रहनेपर भी पुत्र आप भार ढोते हैं और अपनी मांसे भी भार ढोआते हैं। इसलिये राष्ट्रके लिये, धर्म्मके

लिये देशके गौरवके लिये स्त्रियोंका हृदय बनना परमावश्यक है। और उनका हृदय स्वाध्यायसे वनता है चरित्र संगठनसे वनता है। ख्याल रहे! डौन्सनके जूते खट खटानेवाली, अंगरेजी फैशनसे दवी हुई, केवल शरीर सजनेवाली भारतीय स्त्रियोंसे हमें उमीद नहीं है कि हमारी कुछ भी भलाई होगी। हमें तो अपने भारतीय वेश भूपामे कुन्ती चाहिये, गङ्गादेवी चाहिये, जीजी बाई चाहिये जिनसे धर्म्मवीर, रणवीर, दानवीर और सच्चे त्यागी पैदा हो सके।

गर्भावस्थामें अवसर स्त्रियां बैठी रहती हैं। पर सच पूछिये तो गर्भावस्थामे जैसा जैसा भावस्त्रियोंको उदय होगा बच्चा भी उसी स्वभाका पैदा भी होगा। इसलिये जैसी सन्तान पैदा करनेकी इच्छा हो वैसे ही पुस्तकोंका स्वाध्याय होगा वैसे ही स्वभावकी सन्तान भी पैदा होगी। इसलिये पुरुष तो केवल अपने हा लिये पढ़ते हैं पर स्त्रियां तो दोके लिये पढ़ती हैं—अपने और अपनी सन्तान दोनोंके उनका अध्ययन होता है। पर दुःख है कि भारतमे परदे और वाल-विवाहकी वजहसे इच्छा रहते भी स्त्री जातिको नही पढ़ा सकते। दश वार हर्षकी अवस्थातक भलेही स्कूलोंमें जा सके। भले ही कुछ पढ सकें फिर वारह वर्षोंके बाद उनकी दौड़े वाड़ेके वैलकी तरह चहार दीवारीके भीतर रहेगी, कूल्हेकी फूकतक उनका अध्ययन रहेगा। उसमे भी मजा यह कि लड़किया ६, ७ वर्षोंकी अवस्थातक खेल कूदमे रहेंगी। मानों

४, ५ वर्षों तक पढ़लिख पंडिता हो सकती हैं। तो क्या इतनेही समयमें अध्यापिकाजी उन बालिओंको विद्या घोलकर पिला देंगी? या कही बाहरसे विद्या पार्सल मंगाकर उन्हें! नाममें दे दिया जायेगा महाशयो, क्षमा करें! इस जाति रत्नके प्रति दया भिक्षा दे। उन्हें स्वाध्याय करने दें।

* इति *

स्वाध्याय।

स्वाध्याय शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है, सुपु साध्वकतया अध्ययनम् वे दाना मिति स्वाध्यायः। स्वाध्यायोवेद :—

स्वाध्याव शब्द वेदोंके अर्थका वाचक है। अतः यह जान लेना परमावश्यक है वेद क्या है, वेदोका अर्थन्तत्त्व (माहात्म्य) किस प्रकार है ?

सायेत अनेनेति वेदः। यद्वाइष्प्राप्त्यनिष्ट परिहारयो रलौकिकमुपायं यो ग्रन्थों वेदयति ज्ञापयति स वेदः। "प्रत्पक्षेणानुमित्या वा पस्तूपायो न बुद्धयेत। एत विदन्ति वेदेन तस्मात् वेदस्य वेदता। वेद शब्द विद्वाधातुसे सिद्ध होता है। जिसका शब्दार्थ जानाना है। जिसके द्वारा 'ब्रह्मज्ञान सत्यज्ञान उत्पन्न होता हैं उसे वेद कहते अथवा जो ग्रन्थ अपने अपने इप प्राप्ति, प्रत्येक मनुष्योंको

अपने २ कार्य्योंमे सफलता प्राप्त करने लिये और अनिष्ट बुरे कार्य तथा प्रत्येक प्राणियोंके दुःख निवारणके लिए (अलौकिक) उत्तमोत्तम उपाय बतलाता है वह वेद है। जो (उपाय) नियम (प्रत्यक्ष) साक्षात् या अनुमानसे नही मालूम हो सकते हैं उन नियमोंको हम वेदोंके द्वारा जान सकते हैं।

विद्या धन सर्व धन प्रधानम्।

विद्यारूपी धन सब धनोंमे उत्तम है। विद्या तो नीच मनुष्यको भी सुमार्गपर नियुक्त कर देती है तथा मूक गूंगेको भीवाचाल बना देती है। धनकी तरह दान करनेपर इसमे क्षीणता नही होती किन्तु उत्तरोत्तर उन्नति ही होती जाती है। ऐसी कौन वस्तु इस संसारमे है जो विद्याके प्रभावसे दुर्विज्ञेय है। संक्षेपसे विद्याके भेद प्रदर्शित किये जाते हैं:—

शिक्षा कल्पा व्याकरणं निरूक्तं छान्दसाखतिः चत्वारो वेदाः ऋगादय :—मीमांसा, आन्वीक्षिकी, मानवादि धर्म शास्त्रम् सबसे प्रथम शिक्षा है शिक्ष्यत इति शिक्षामें वर्णोंकी तथा स्वरादिकोंके उच्चारणकी शिक्षा है।

कल्प।

यह वह विद्या है जिसमे यज्ञादिक करनेके नियम हैं।

व्याकरण।

इस व्याकरणसे प्रत्येक शब्दका अर्थ ज्ञात हो है तथा प्रत्येक शब्दकी सिद्धि जानी जाती है।

निरुक्तम् ।

यह निरुक्त वेदोंके अर्थोंका विवेचन करनेके लिए अत्यन्त सहायक है

ज्योतिष ।

इस शास्त्रके सूर्यादिग्रह तथा उपग्रहोंका ज्ञान होता है। इस प्रकारका ज्योतिष शास्त्र है फलित २ गणित।

छन्द ।

यह पद्य विशेष प्रतिपादक ग्रन्थ है। ऋग्वेदमे यज्ञविधि तथा यज्ञो नियम प्रदर्शित किये है—जिस प्रकार निम्नलिखित ऋचा ओसे स्पष्ट होती है कि पूर्व समयमे यज्ञादिक विषयोंकी किस प्रकार प्रधानता थो और हमारे इस भारतवर्षमे अग्निहोत्रका वहुत ही प्रचार होता था। तथा समस्त प्राणी अपने आपको अग्नि-होत्रके विधानसे पवित्र किया करते थे।

ऋचा ।

नराशंसमिह प्रिय मस्मिन यज्ञे उपह्वे मधुजिह्वं हविस्कृतम्। अस्मिन् वर्तमाने यज्ञे इह देवयजन देशे नराशंसं नामकमग्निम् उपह्वेय, आह्वयामि।

पुनः ।

अग्ने सुखतमें रथे देवां ईज्ञित आवह असि-

होता मनुर्हितः। हे अग्ने, ईलितोऽस्माभिः स्तुतः सन् सुखतमेऽतिशयेन सुख हेतौ कास्मिश्चि दुथे देवान् स्थापयित्वा कर्मभूमौ, आवह मनुर्हितः—मनुना मंत्रेण मनुष्येण वा यजमानानादि रूपेण हितोऽअवस्थापितऽस्त्वा होता देवानामाहोतासि।

हे अग्ने! मैं आपका आवहन करता हूं तथा इस मेरे यज्ञमे आप मुझको कर्मभूमिमें प्राप्त करो जिससे मैं शुभ कार्य करूं। हे अग्ने! आप देवताओंकी प्रीतिका कारण हो, तथा हविको देवताओंको प्राप्त करती हो अतएव मैं आपका आवाहन करता हूं मुझे आप सफलता देवें।

अवश्रजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः प्रदातुरस्तु चेतनम्।

हे वनस्पते! एतन्नाम काग्ने, देव, हविर्भुग्भ्योदेवेभ्यो अस्मदीयं हविरवसृजा। समर्पय।

हे अग्ने, देवताओंके प्रति हमारेसे समर्पित की हुई यह हवि देवताओंको प्रीति लिए उन्हें समर्पित करो। वेदोंमें प्रत्येक ऋचायें अतीव गम्भीराशयोंसे भरी है।

परन्तु बड़ा आश्चर्य है कि हम आज वेदोंके नामसे ही घृणा करने लगे है। यह शिल्पकला तथा गायन विद्या, तथा यज्ञविधि,

यज्ञादिकोसे इन्द्रादि देवताओंको प्रसन्न करनेके उपाय हमारे वेदोमें ही उल्लिखित है। परन्तु दुर्भाग्यवश ज्यो ज्यो प्रचार कम होता गया त्यो त्यो हमारी इस प्रकार की दशा होती गई। यही कारण है कि आज हमारी तथा हमारे भारतवर्षकी दशाका परिवर्तन होता जा रहा है। पाठको! यदि कहें कि समत एवं करोति वन्ना वन्नप बहुतसे प्राणि कह दिया करते हैं कि यह सब समयाधीन ही है। नहीं यह उनका कथन वृथा तथा निर्मूल है। समयको अपधीन करना हमारा कर्तव्य है। हमको चाहिये कि हम वेदोके नियमोंपर चलें तथा उनको आज्ञाका पालन करें। परन्तु आजकल तो हमारे भारतवर्ष वेद नियमोका पालन करनेके विरुद्ध तथा वेद-वोधित यज्ञ अग्निहो इत्यादिकी अपेक्षा, धूम्र पानादिसे ही अपने आपको कृतार्थ कर रहे है। सो यह सव शिक्षाका प्रचार न होनेसे ही यह दशा हो गई। बहुतसे इस देशमे जो कि अपने अपयको हिन्दू कहलाते है परन्तु उनको वेदोकी गन्धतक भी उनके पास नही पहुचनी पाती।

अध्ययनम अध्ययनश्चैव वाङ्मय तथा उच्चते, तथा एका शब्दः सम्यक् ज्ञातः स्वर्गे त्राके च कामधुक् भवसि, वेदको पठन पाठनसे उत्तम लोक प्राप्त होते हैं। क्योकि यह महातप है इसमे चुनेका न कलुतियाँ प्रमाण है।

अतएव बहुतसे मनुष्य, ईशाई, तथा यवनादिक जातियोंमे सम्मिलित होने लगे हैं। सो प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह

वेदोंके सच्चे मार्गका आश्रय ले तथा उसके सच्चे नियमोंका पात्र न करें।

अनेक श्रुतियां प्रमाण स्वाध्यायेतस्थ :—

वेद पढ़ो वेदोंका अध्ययनको यह ब्रह्म विद्या है। यदि परमात्माकी आज्ञाको पालना चाहते हो और इस परम पिताको प्रसन्न रखना चाहते हो तो प्रतिज्ञा कर लो कि हम परमपिता जगदीश्वरके वेद वोधिन विषयोंका पलन करेगे। क्योंकि यह भी हमारी सुखसाधन है।

※ आठवां सोपान ※
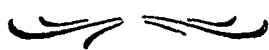
पुरुषार्थी ।

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणिजिजीविषेच्छतं समाः (वेद)

नहिकश्चित् क्षणमपिजातु तिष्ठत्यकर्म्मकृत् (गीता)

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैतिलक्ष्मी-

दैवेनदेयमितिकापुरुषावदन्ति ।

दैवंनिहत्यकुरुपौरुषमात्मशक्त्या,

यत्नेकृते यदिसिध्यतिकोऽत्रदोषः। (हितोपदेश)

उद्योग जो पुरुषसिंह सदाकरे है ।

लक्ष्मी वहां झट खड़ी कर जोड़ती है ॥

जो कर्म्महीन नर भाग्य भरोस करता ।

संसारमें पुरुष नीच वही कहाता ॥

आओ डटो दुखद भाग्य अभी हटाओ ।

शक्ति प्रयोग पुरुषार्थ करो जवानो ॥

मानो हुई सफलता न तबौं न बैठो।
देखो वहां प्रबल दोष कोई हुआ है॥

संसार यात्रामे वही मनुष्य बाजी मार कर सबसे आगे बढ़ जाता है जिसके हृदयमे साहस, उद्यम और पुरुषार्थकी मात्रा बढ़ो चढ़ी है। पुरुष वही जो पुरुषार्थी हो।" इस लोकोक्तिके अनुसार वह पुरुष ही नहीं हो सकता जो पुरुषार्थी न हो। हमारे धर्म्म प्राणवेदमें सैकड़ो ऋचायें पुरुषार्थके लिये भरी पड़ी हैं। वेद तो हमारी दिन चर्य्यामे।

"अमिष्टो द्रविष्टोमेधावीर्भव अभीर्भव।"

अर्थात् खूब परिश्रम करो। दबङ्ग हो, बुद्धिमान हो और निर्भीक हो। कहा है।

आज भारत संतान केवल वैदिक आज्ञासे निमुख होनेसे ही कर्म्महीन भाग्यके भरोसे हाथपर हाथ धरे बैठो है। वैदिक आदेशके अनुसार जिस देशके लोग आज चलते हैं उनके सितारे दुनियांमे ऊंचे चमक रहे है। उनकी पांचो अंगुलियां घीमे है। पर जिनका वेदधन है जिनकी बपौती सम्पत्ति है, वे भारतीय सदा भाग्यकी माला जपते और सभी बातोमे भाग्यकी ही दोहाई देते फिरते हैं। धन गया सम्पत्ति लुटी, पराधीन हुए, संसारमें कुत्तेसे भी नोच समझे गये पर तौभी भाग्यसे पीछा न छुटा। इस भाग्य वादने हमारे सौभाग्य सूर्य्यको सहसा छिपा दिया उमड़ी हुई

सम्पत्ति नदीको बिल्कुल सुखा दिया। हमे दरिद्रताके चादर ओढ़ा कर सदाके लिये निकम्मा बना दिया। यदि ऐसे ही भाग्यके पीछे हम दौड़ा करेंगे तो रही सही दुर्गति भी पूरी हो जायेगी।

जिधर देखिये उधरसे ही भाग्यकी चीख सुन पड़ती है। राजे महाराजे, पंडित महात्मा, कविकोविद सभी भाग्यकी ही डफली बजाते है। मानो पुरुषार्थको भारतसे बिल्कुल मार भगाना चाहते हैं।

यद्यपि हमारे विष्णु शर्म्माने, भाग्यको ललकारा है। ऊपरका श्लोक उन्हीका है।

कवि-सम्राट् गुसाईं तुलसीदासजीने भी सागरदर्प हरणके अवसरपर लक्ष्मणजीके मुखसे कहवाया है—

नाथ दैवकर कौन भरोसू।
सोखिय सिन्धु करिय मनरोसू॥
कादर मनकर एक अधारा।
दैव दैव आलसी पुकारा॥

यद्यपि वेद भगवान्ने खुले शब्दोंमे हमें पुरुषार्थका उपदेश किया हैं। गीता तो कर्म्मयोगसे लबालब भरी पड़ी है। नीति शास्त्र हमें पुरुषार्थ करनेको सङ्केत करते हैं पर तोभी भाग्यकेही मन्त्र रटते हुए हम अपनेको धन्य मानते हैं।

कहां तो इस वाक्यको कहते कहते हम मरते थे कि—

"करिष्यामिकरिष्यामिकरिष्यामीति चिन्तया ।
मरिष्यामि मरिष्यामि मरिष्यामीति विस्मतम् ॥"

अब हो गया ।

मरिष्यामि मरिष्यामि मरिष्यामीति चिन्तया ।
करिष्यामि करिष्यामि करिष्यामीति विस्मतम् ॥

अर्थात् काम करूंगा, करूंगा अवश्य करूंगा इस चिन्ताने मरूंगा यह बात भुला दी । अब हो गया हाय मरूंगा, मरूंगा, मरूंगा री दैया । इस चिन्ताने करूंगा काम यह बात भुला दी ।

कहा तो हम कहते थे—

शरीरंवा पातयामि कार्य्यं वा साधयामि ।

अर्थात्

प्रणको नहि कबौंतजैंगे तनको वरु होम करेंगे ।

आज उसके विपरीत "भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या नच पौरुषम् ॥ कितनी गिरीदशा पहुंच गयी ।

कहा तो चार सौ कोस समुद्रमे पुल बांध कर वानरो और शूद्रोको साथ लेकर श्रीरामजी प्रवल सम्राट् रावणको मिट्टीमे मिला देते हैं और कहा राम भक्तजी कहते हैं कि—

"अजगर करै न चाकरी पंछी करे न काम ।
दास मलूका कह गये सबके दाता राम ॥"

हायरे ! मलूकादास !! तेरा भला हो । भला तूने हम भारतीयो-

को क्या उपदेश दिया। कैसी जहरकी घोटी पिलाई। जिन्हे मार डाला।

यह सब कुछ हिन्दू धर्म्मके प्रतिकूल है। भक्तिके प्रतिकूल है। कौन कहता है कि ईश्वर भक्त हनुमानने समुद्र लांघनेसे मुख मोड़ा। कौन कहता है कि प्रह्लादने राजाकी डांट डपटसे जरा भी कर्तव्यसे मुख मोड़ा। कौन कहता है कि श्रीकृष्णजीने पुरुषार्थ छोड़कर भाग्यका नाम भी लिया। अर्जुन युद्धसे भागता था। कर्तव्य विमुख हो रहा था। कृष्ण भगवानने ललकारा—

कुतस्त्वां कश्मल मिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्य्यजुष्ट मस्वर्ग्य मकीर्ति करमर्जुन ॥

अर्जुन, तुझे बेवक्त यह नतुंसकता कहांसे आ गयी। अरे यह काम आर्य्योंका नही है? ऐसा करनेसे तुझे नर्क होगा। अपकर्ति होगी। पर आलसियोने धर्म्मकी ओटमे अधर्म्म कर डाला। धर्म्मका वाना पहन कर माता मातृ भूमिकी छातीपर खूंटा गाड़ दिया।

अनुपायः कृशः शान्तोवोन्द्यमाणा वधूमुखम्।
यो गृहेष्वेव निद्राति स दरिद्राति दुर्मतिः ॥

अर्थात् जिसे कोई उपाय न सूझता हो। जो शान्त बैठा हो, जो दुबळे पतले होनेपर भो अपनी वीवोजोका मुंह देखता रहता हो जो घरमे ही बैठा वेठा ऊंघता हो वही मूर्ख दरिद्र होता है।

पुरुषार्थियोंके लिये तो कोई भी असम्भव शब्द ही नही है। एल्पसपर्वत परबर्फपर चलनेके समय नेपोलियन बोना पार्टने कहा था कि Imdossiblo is a woid to be found only in the dictionaiy of fools

अर्थात् "असम्भव शब्द मूर्खों के कोषमे ही पाया जाता।" हम कर्म्मयोगियोंके कोषमें असम्भव शब्द ही नही है। पुरुषार्थियोंने प्रकृतिकी गोदमें छिपी हुई विजलीको संसारके सामने ला रखा। वेतारका तार, रेल, टारपिटो, हवाईजहाज, इत्यादि अद्भुत चीजोंको संसारके सामने ला रखना खेल नही है। पुष्यकविमानका खंडन कर देना सहज है। विजलीसे सब काम करनेवालेको जादूगर कह देना वहुत आसान है पर इन वस्तुओंकी इजाद करना कम साहसका काम नहीं है।

जिनके पास ईश्वरने दो पैसे दिये हैं, जो लक्ष्मीके लाल हैं उनके पास आलस्यकी कमी नहीं आलसियोंकी कमी नही है। वहां आलस्यका दौर दौरा है। घंटो तमाकू पीने और तमाकू सजनेमें लगते हैं पर किसी उद्योगधन्धोंमें उनका कोमल हाथ नहीं वढ़ता, किसी कार्य्यके लिये उनका लाल पैर नही बढ़ता। वे ईश्वर-भजनकी चादर ओढ़कर अपने आलस्य चिह्नको छिपा लेते हैं, वे कंठी तिलकका वाना पहनकर लोगोकी आंखोसे अपने आलस्यकी ओट कर सकते हैं पर सच पूछिये तो इसी वेषभूषाने हमें मार डाला। हम ईश्वर भजनके विरोधी नहीं हम सम्प्रदा-

यिक वेशभूपाके विरोधी नहीं। सभी अपने विश्वासके अनुसार अपने संप्रदायिक चिह्न रखनेमें स्वतन्त्र हैं, जबतक उनका विश्वास न बदल दिया जाय। पर दुःख तो इस बातका है कि वे अपनी सारी कमजोरियोंको सम्प्रदायकी ओटमें छिपाते हैं। ईश्वरको सामने रखकर अपनी सारी ऐबको छिपाना महापाप है। क्या विदेशोंमें सम्प्रदाय नहीं हैं, वहा सम्प्रदायिक मतभेद नहीं है? हैं सब कुछ पर आलसियोंके छिपनेकी कोई जगह नहीं, उनको ऐब छिपनेका कोई थाना नहीं। यहां तो साधुके वेश, भिखमंगोंका वेश, संन्यासियोंका वेश, पडित ब्राह्मणोंका वेश गुरु और मठाधीशोंका वेश, इस भाति सहस्रों निकम्मों और अवारोंका वेश भारतमें देख पड़ता है। सच्ची बात कही जाय, देश और समाजकी भलाईकी बात कही जाय तो ये आलसी कहनेवालोंके ऊपर भूखे बाघकी तरह टूट पड़ते हैं। "युद्धं देहि" कहकर झगड़ा करनेपर तुल जाते हैं। आज इन्हीं आलसियोंसे सामना करना है, इनके आलस्य और निकम्मेपनेकी चादर फाडनी है। तब कहीं सच्चा पुरुषार्थ भारतमें देखाई देगा। हम गल पचकर देशको आगे ले चलना चाहेंगे और ये निकम्मे ढोंगी धर्म्मकी दोहाई देकर हमें पीछे घसीटेंगें।

समुद्र यात्रासे अन्त्यजो (चमार इत्यादि कारीगरोंसे) छुआ जानेसे जब हमारी जाति लोमडी ऐसी भाग जाती है जब बिना पूजा किये बाहर निकलनेसे धर्म्म रसातलको चला जाता है तो

हम कैसे अपना पुरुषार्थ कर सकते हैं? कैसे कर्म्मयोगी हो सकते हैं! हमारी दशा उस सुग्गेकी तरह है जो पिंजड़ेमें वन्द हो। चारो ओरका दरवाजा वन्द हो। कोई रास्ता नही जो वाहर निकल सके। उसकी पांखे वर्तमान हैं, हाथ पैर भी मजबूत है पर लाचार है। पांख फटकारनेकी भी जगह नही है।

"उत्पद्यन्ते विलीयन्ते दरिद्राणां मनो यथा।"

के न्यायसे इच्छा होती है कि हम आगे वढे पुरुषार्थ देखावें पर हमारे सामने वाधाओंका पहाड टूट पड़ता है। हमें इस पहाडको तोडना है तव आगे वढ़ना है। विघ्नोका काम है वे आया करे हमारा काम उन्हे हम लातो कुचलकर चल दें।

"विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रति हन्य माना श्चारभ्य-
चोत्तमजनानपरित्यजन्ति।"

आज ललितकला-चन्द्रको आलस्य वादलने छिपा दिया है, व्यापार भूमि उसर हो रही हैं, यन्त्रोंके आविष्कारकी नदी सूख गयी है, समाज रसातलको जा रही है। इस समय हमें खम्भ ठोककर पुरुषार्थके मैदानमें जा उतरना चाहिये। हममे शक्ति है, हममें सभी पुरुषार्थ वर्तमान हैं पर आवश्यकता है साहस और दृढ़ता की। फिर देखिये आपके सव पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं कि नहीं।

वल-शक्ति, धन-शक्ति, विद्या-शक्ति, इन्हीं तीनों शक्तियोंसे संसारमे मनुष्य आगे वढ़ता है। इन तीनो शक्तियोंमें एक शक्ति का भी यदि अभाव हो तो उसके सामने कठिनता वाविन मुंह वाये खड़ी रहती है और जहां तीनोंका अभाव हो उसका कहां ठिकाना है? आज दुनियांके पर्दे पर कमजोरके लिये जगह नहीं है। संसार कमजोरको कुचल डालना चाहता है। कमजोरकी वुद्धि जङ्ग लगे हुए कलके पुरजेकी तरह निकम्मी हो जाती है। वही मूर्ख है, वही नालायक है, वही वदमाश है जो कमजोर है। और कमजोर वही होता है जो मिरुधमी हैं। मनुमहाराज भी यही कहते हैं कि—

'आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।"

अर्थात् मनुष्योंके शरीरमें आलस्य भारी शत्रु है।

धन नही है, साधन नही है, सहायक नही है। कोई परवाह नहीं। उद्यमी या पुरुपार्थी अकेले सव कुछ कर लेता है। भगवान् रामचन्द्रजीके पास धन नही था, साधन नहीं था सहायक भी नही था पर उन्होंने ताल ठोककर कठिनताका सामना किया। पुरुपार्थी श्रीरामके सामने धन, साधन और सहायक सभी हाथ जोड़ने लगे। सव कुछ कर लिया। स्वामी शङ्कराचार्य्य, वुद्ध भगवान, स्वामी दयानन्द इत्यादि धर्म्मवीरोंके पास कौन धन, साधन और सहायक थे पर वे जव सच्चे पुरुपार्थी हो संसार

क्षेत्रमें कूद पड़े, कठिनताका आलिङ्गन किया तो सभी सहायक हो गये। भारत इनके इशारे पर नाचने लगा। चीन या जापानने अकेले अपने पैरपर खडे हो संसारको सबक सिखा दिया। अमेरिकाने एक हाथसे अपना पेट भी भरा और एक हाथसे कठिनताका सामना भी किया। परलोकवासी महात्मा कार्नेगी बहुत साधारण स्थितिमें रहते हुए भी अपने अध्यवसायसे अरबोंकी सम्पत्तिके मालिक हो गये। भारतवर्षमें भी बङ्गालके हयाघाटके "कृष्णपान्ती" ने पान बेचते बेंचते दरिद्रावस्थासे करोडोंकी सम्पत्ति उपार्जन की और खूब दान धर्म्म भी किया।

ससार कर्म्मयोगियोंका है। "वीरभोग्या वसुन्धरा।" प्रकृति देवी जाति कुल या अधिकार कुछ नहीं देखती है अदम्य उत्साह वह देखती है। पुरुषार्थी उत्तर ध्रुवको ढूंढनेनेके लिये सैकड़ो अङ्गरेजोंने जानें दी। गैस सिद्ध करनेके लिये कितनोंने जाने दी।

समुद्र-मंथनके समय देवता और दैत्योंको पहले पहल हालाहल विप मिला। इससे वे घबड़ाते तो अमृत नही पाते। वृहस्पतिका लडका कच शुक्राचार्य्यके पास अमृत संजीवनी विद्या सीखने गया। असुरोंको यह कार्य्य बुरा मालूम हुआ। उन्होंने शुक्राचार्य्यसे कचकोन पढ़ानेको कहा। आचार्य्यने नहीं माना। एक दिन कचको अकेले पाकर मार डाला। ढूढ़ते ढूढ़ते जब शुक्रा चार्य्यने कचको वनमें दो टुक पड़े हुए पाया तो उन्होंने अपनी अमृत

संजीवनीसे कचको जिलाया। आचार्य्यने उसे भाग जानेको कहा। पर कचने गुरुजीसे कहा कि जवतक जिन्दा रहूगा तवतक आपकी शरण न छोड़ूंगा। ऐसा कई वार होनेपर भो कचने अपनाकर पुरुषार्थ न छोड़ा। अन्तमे विद्या लेही कर दम लिया। इस भाति सहस्रो उदाहरण मिलता है। जिस जातिमे उत्कर्ष, उत्साह या पुरुषार्थ जितनी ही अधिक मात्रामे पाया जाते है वह उतनेही अपने जीवनको संसारमें कीर्तिके साथ विताती है।

अर्थात् व्यवसायियोके कौन देश दूर है। "यद्देशंश्रयतेत-मेव कुरुते वाहु प्रातापार्जितम्" जिस देशमे पहुंच गये उसी देशको अपने वाहुवलसे वशमे कर लिया। अङ्गरेजोंको भारतमे पहले पहल आनेमे जितनी कठिनता पड़ी थी यह इतिहासज्ञ भलिभाति जानते हैं। कई वार इनकी जान जोखिममे पड़ गयी थी। पर अन्तमे अपने उद्देश्यको पूरा करके ही छोड़ा।

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निवोधत।"

अर्थात् उठो जागो जव तक अपने लक्ष्यतक न पहुंचो दम न लो। महम्मद गोरी वहुत वार हार चुका था। हिस्मत जा रही थी। फिर देखा कि एक चींटी वार वार दीवारपर चढ़ती और गिरजाती है। अन्तमें वह दीवारपर चढ़ ही गई। महम्मद गोरीने समझ लिया कि "करत करत अभ्यासके जडमति होत सुजान। रसरी आवत जावते शिल पर पड़त निशान॥" विल्कुल ठीक। ध्रुव सत्य।

आब्रह्मस्तम्ब पर्य्यन्त सभी पुरुषार्थमे लगे आगे बढ़ रहे हैं। प्रकृति पुत्र जलवायु सूर्य्य चन्द्रमा तारे ग्रह उपग्रह कौन बैठा हुआ है। तुम्हारी पृथ्वीही कब बैठी हुई। इस कीभी गति नियत है। उतना चलना जरूरी है। उतना चलना जरूरी है। तुम चाहे भलेही टांग फैलाये सोते रहो, बैठे बैठे तास सतरंज खेलो पर पृथ्वी, सूर्य्य, इत्यादि अपने कामसे एक पल भी विचलित नहीं होते। पर हाय! हमारे लाला या बाबूजी तो धूपसे गल जायेंगे, लाहके टुकड़े हैं जहा जरासी गर्म्मी लगी कि पिघल गये।

जहा और देशके लोग समुद्रकी लहरोंसे खेलते हैं वहा हमारे संस्कृत नाटकोंमें राजा साहबको अपने ही घरका रास्ता भूल जाता है तो प्रतिहारी कहता है कि "इत इतोदेव" अर्थात् महाराज यह रास्ता है। इधरसे चलिये। हालांकि यह भारतीय राजाओंके चरित्रसे भिन्न है। जिस समय युधिष्ठिरादि स्वर्गकी तरफ जा रहे थे तो बड़े बड़े दुर्गम रास्ते मिले। ऐसी जगह भी पहुंचे जहा बालूकी वर्षा हो रही थी। पत्थरके कणे उड़ रहे थे। न आगे चल सकते थे न पीछे लौट सकते थे। द्रौपदी वेहोश हो कर गिर गयी। परवाह रे पुरुषार्थ। इतना होनेपर भी पांडव विचलित नहीं हुए। आगे बढ़ते ही गये।

भीमको ऐसेही एक बार सुवर्णमय कमलको लानेके लिये गन्धर्वलोकततक जाना था। बीचमे बड़े बड़े विघ्न आये। बड़े बड़े राक्षसोंसे भिडन्त हुई। पर सब विघ्नोंको लातो कुचलते हुए आगे

बढ़ते गये। अन्तमे अपने उद्देश्यको पूरा कर ही डाला। इसको कहते हैं साहस, पुरुषार्थ। इन चरित्रोंको देखनेसे कैसे कोई कह सकता है कि हमारे राजे महाराजे कम साहसी थे।

बात यह है कि हमने अपने पूर्व पुरुषोंके पुरुषार्थका मनन नही किया। नही तो हमारे कविगण ऐसे पुरुषार्थको लातो न कुचलते?

श्रीरामने ही अपनी धर्म्म पत्नीका हरण देखा। अपने भ लक्ष्मणकी मृत्यु लक्षण भी देखे। अपने सहायकोंका खून भ देखा पर आगे बढ़ते गये। रुके नही। इसलिये स्त्रियोंको "असूर्य म्पश्या" कहना और राजाओंको निकम्मा बनाना हमारे कवियो योंकी भूल थी। इसलिये आवो हमारे भारतीय नौ निहालो! इस बहती हुई व्यापारिक राजनैतिक समाजिक धार्म्मिक समुद्र धारा कूद पड़े। आगे बढ़ते जाओ।

धर्म्म शास्त्रोंमे पीछेसे घुसाये गये स्वार्थियोंके वाक्यप ध्यान मत दो! धर्म्म शास्त्रकार त्रिकालमे भी ऐसी भूल नहीं कर सकते कि:—

"भूमिं भूमि शयांश्चैव हन्तिकाष्ठमयोमुख।" (मनु)

अर्थात् खेती करनेवाले जमीन और जमीनमे पड़े जीवोंको काष्ठमय मुखसे मार डालते हैं। इनकी मतिमे जमीन जोतकर अन्न उपजानेवाले भी पापी हैं। ये संसारके सामने सबको मूर्ख बनाना

चाहते हैं। इन्होंने वैद्य, वाणिज्यसे जीनेवाले, समुद्रपार जानेवाले व्याजसे जीविका करनेवाले वृत्तिके लिये गाय, भैंस बकरी भेड़ इत्यादिके पालनेवाले रस वेचनेवाले, धनुषबाण बनानेवाले, हाथी ोड़ा, वैल, ऊंटको सिखानेवाले युद्ध-विद्या सिखानेवाले, गृहवास्तु वेद्यासे जीविका करनेवाले वृक्षोके लगानेवाले, खेती करनेवाले, वाले इत्यादि ऐसे हेय समझे गये कि श्राद्धमे इनका आना अशुभ समझा गया। उनसे पूछो कि क्या भीख मांगनेवाके ही सबसे श्रेष्ठ हैं? इन देशके देवताओको तो इन्होंने नीच समझा तो क्या चोरी, व्यभिचार करनेवाले उच्च कहे जायंगे? द्रोणाचार्य्य, भीष्माचार्य्य इत्यादिको धनुप और वाण वनाकर देनेवाले, श्रीरामकृष्णको वाण देनेवाले पतित कहे जायेंगे तो क्या किसी बड़े आदमीको ढकनी मियांकी दूकानसे शराव लेकर पिलानेवाले उच्च कहे जायंगे। इन धूर्तोंने तो हमारे धर्म्म शास्त्रोंकी भी मट्टी पलीद की। इसलिये हमारे नौनिहाल जवानो। अपने पैरको आगे बढ़ाते जाओ, अपनी सव प्रकारकी शक्ति बढ़ाते चलो स्थान स्थान पर मल्ल शाला खोल दो। माताओंका हृदयवीर रससे, उत्साहसे भर दो कि पुरुषार्थी सन्तान पैदा करें।

भगवती जानकोने वन वनकी पत्तियां चबाई थी। देवी कैकेयी अपने पतिदेव दशरथजीके साथ देवासुरसंग्रामके भूमिमे गई थीं। अहल्याबाईने राज्य चलाया था, तुलसीबाईने समर

भूमिको हिलाया था। झांसोकी रानीने अपनी रणकौशलको देखाया था। भगवती द्रौपदीने समरके लिये युधिष्ठिरको ललकारा। स्वयंकुन्तीने अपने वीर पुत्रों (पाड़वोंको) को कहा था कि—"बेटों, ऊखसे टूट जाओ पर लचोमत।" विन्दुलाने रणसे लौटे अपने बेटेसे कहा था कि—

"क्षणाद्धि ज्वलितं श्रेयोनच धुमायितं चिरम्"

अर्थात् एक क्षण जीना और आग चमकते हुए जीना अच्छा है बनिस्पत् धुआ देते हुए बहुत दिनोंतक जीनेकी। जीजी बाई होने शिवाजोको तैयार किया था। जब राणाप्रताप चिन्तित होते थे तो उनकी धर्म्म पत्नी ही नसोंमें गुद गुदी पहुंचानेवाले और धर्मनियोंमे गर्म्मी पहुंचानेवाले वाक्योंको सुना सुनाकर उनके खूनमे गर्मी लाती थी। सामने विजली चमका देती थी। स्त्रियोंके लिये तो नोतिशास्त्रनेही निश्चय कर दिया है कि "साहसश्च चतुर्गुणः" अर्थात् पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें चौगुना साहस है। पराक्रममें बढ़ी चढ़ो है। जब फ्रांस पस्त हिम्मत हो चुका। वोर योद्धा भाग खड़े हुए तो एक स्त्रीने हा जिसका नाम जोन आफ यार्क (जेनीडार्क) था, स्वतन्त्रताका झण्डा उठाया था। इसलिये स्त्रियोंको अधिक साहस बनाना चहिये।

गिरा आर्य्य गौरव उठाओ।

भारतलक्ष्मी आज पुरुषार्थियोंकी वाट देखती है। सरस्वती

भी पुरुषार्थियोंका मुह देखती है। बलपौरुषभी पुरुषार्थियोकी इन्तजारोमे बैठे है। एक पुरुषार्थके छोड़ देनेसे ही देशका व्यापार चौपट हो रहा है। और कुछ अध्यवसाय तो किया नही केवल बैठे बैठे चार पैसे नफामे आये तो छ पैसे खर्च कर डाला। फिर वेई-मानी को सूझी। चोरी डकैतोकी सूझी। झट टाट उलट दिया लाखोकी थैली हडपकर गोवर गणेश हो बैठ गये।

पुरुषार्थी होनेके उपाय।

व्यर्थ कभी भी मत बैठो। काम करनेका समय नियत कर दो। बल्कि भोरमे लिख लो कि मुझे इतने काम करने हैं। लटपटी पोशाक मत पहनो। अपनी आयसे एक छदाम भी अधिक खर्च मत करो बल्कि दो पैसा बचानेका यत्न करो। पुरुषार्थ करनेके समय अनित्यताको मत पास फटकने दो। क्योकि हमारा शास्त्र भी कहता है कि—

> अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
> गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्म माचरेत्॥

अर्थात् जबतक व्यापार करो अर्थोपार्जन करो और जबतक पढ़ो लिखो तबतक समझ रखो कि न हम कभी मरेंगे न बुड्ढे होंगे। और धर्म करनेके समय समझो कि मृत्युने मेरी चोटी पकड़ ली है जो कुछ मैं दे दुंगा वही मेरे काम आवेगा।

यह संसार ही कर्म्मक्षेत्र है। इसमें बैठकर खाना महापाप है, अधर्म्म है। इसलिये स्त्री-पुरुष, बुड्ढे, बच्चे, जवान सबोको अध्यवसाय करते रहना चाहिये। स्त्रियोको भी यह न सोचना चाहिये कि मुझे बैठे रहना चाहिये।

प्रार्थना।

पिताजी यह दीजै बरदान।
भाई भाई प्रेम करैं हम हो सबका कल्याण॥
नारीजन बिदुषी हो जावैं, हों किसान बिद्वान।
हिन्दी होवे राष्ट्र भाषा, हो भारत उत्थान॥
डटे रहै हम सब निजप्रणपर, नहीं छोड़ें अभिमान
भारत भारतिपुर हो जावे, आजावे अब जान।

(उद्धृत)

भूल संशोधन।

यह पुस्तक केवल ४ दिनमें छपी है। और प्रूफ भी केवल एक बार देखा गया है अतः अनेक अशुद्धियोंका रह जाना स्वाभाविक है। किन्तु १२६ से १४४ पृष्ठ तकका प्रूफ भूलसे एक बार भी नहीं देखा गया, जिससे कई जगह अर्थका अनर्थ हो गया है। अतः उन अशुद्धियोको संशोधन कर देना आवश्य समझ हम पाठकोंके समक्ष अपने दोषोके लिये क्षमा मागते हैं।

पृष्ठ	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१२६	१	लिये	के लिये
१२६	२१	सात	ज्ञात
१२६	२१	हो	होता
१३०	२०५	उपद्रहों	उपग्रहो
१३१	२२	शित्यकला	शिल्पकला
१३२	११	अग्नि हो	अग्नि होत्र
१३२	७	पात्रन	पालन
१३२	१४	अपयको	आपको
१३२	१५	पहुचनी	पहुचाने
१३३	४	को	करो
१३३	४	करगे	करेंगे।
१३३	७ यह भी हमारी सुख साधन है		यही सुखसाधन है
१३८	११	नतुंसकता	नपुंसकता

—लेखक